Development of Teaching Material towards a Pedagogy of Race in Twentieth Century Latin American Literature.

Thesis submitted to the Jawaharlal Nehru University

for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

SUNIL KUMAR

Centre for Spanish, Portuguese, Italian and Latin American Studies

School of Language, Literature and Culture Studies

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

New Delhi – 110067

2022

Centre of Spanish, Portuguese, Italian and Latin American Studies
School of Language, Literature and Cultural Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi - 110067

CERTIFICATE

This is to certify that the Thesis titled **"DEVELOPMENT OF TEACHING MATERIAL TOWARDS A PEDAGOGY OF RACE IN TWENTIETH CENTURY LATIN AMERICAN LITERATURE" s**ubmitted by Sunil Kumar, to the Centre of Spanish, Portuguese, Italian and Latin American Studies (CSPILAS), Jawaharlal Nehru University, in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of Doctor of Philosophy (PhD.) is an original work and has not been submitted, in part or full, for any other degree or diploma of any other university. Therefore, we recommend that this dissertation is placed before the examiners for evaluation.

Therefore, we recommend that this thesis may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Prof. INDRANI MUKHERJEE
Chairperson
CSPILAS/SLL&CS/JNU

Prof. INDRANI MUKHERJEE
Supervisor

Dated: 28th June 2022

DECLARATION

I declare that the material in this thesis titled **"DEVELOPMENT OF TEACHING MATERIAL TOWARDS A PEDAGOGY OF RACE IN TWENTIETH CENTURY LATIN AMERICAN LITERATURE"** submitted by me is my original work and has not been previously submitted for any other degree of this university or any other university or institute.

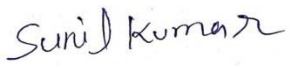

Sunil Kumar

Dated: June 29, 2022

Acknowledgement

Foremost, I would like to express my sincere gratitude to my supervisor Prof. Indrani Mukherjee for the continuous support of my Ph.D study and research, for her patience, motivation, enthusiasm, and immense knowledge. Her guidance helped me in all the time of research and writing of this thesis. I could not have imagined having a better supervisor and mentor for my Ph.D study.

Besides my supervisor, I would like to thank the rest of my research advisory committee: Prof Ranjana Bannerjee and Dr. Sovon Sanyal, for their encouragement, insightful comments, and hard questions.

I thank my fellow Hostel mates and Friends in JNU campus Dr. Ahsan Ahmad, Sadiq Altaf, Pankaj Singh, Dharmprakash Manto, Azhar, Tanwishree Patra, Saman Khan, RVS Wonmaya, Reyazul Haque, Harsh Nagar, Harshit, and Sumit, for the stimulating discussions, ideas, motivation and financial support, and for all the fun we have had in the last four years.

Last but not the least, I would like to thank my family: specially my wife Bandana for her continuous support throughout this journey and my parents, mother Sona Devi and father Ram Jeet for providing me mental support and continuous love.

Index

प्रस्तावना : थीसिस का परिचय: दायरा और उद्देश्य 2

अध्याय1 . कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर और नस्ल/रेस की लिखित ज्ञानमीमांसा .20

अध्याय 2: स्पेनिश में नस्ल आधारित शिक्षण सामग्री का औचित्य......53

अध्याय3 :ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन:आलोचनात्मक सोच के कुछ वैचारिक मुद्दे 87

CAPÍTULO 4: UN MATERIAL DIDÁCTICO SOBRE LA RAZA EN LA LITERATURA LATINOAMERICANA DEL SIGLO XX. 131

निष्कर्ष.....165

BIBLIOGRAPHY: 172

प्रस्तावना : थीसिस का परिचय: दायरा और उद्देश्य

भारत में स्पेनी भाषा को पढ़ाने की शुरुआत लगभग 6 दशक पहले हुई । भारत में सबसे पहले स्पेनी एक विदेशी भाषा के रूप में रक्षा मंत्रालय नई दिल्ली तथा राष्ट्रीय रक्षा अकादमी खडकवासला, महाराष्ट्र, में 1958 में आरम्भ हुयी। इन संस्थानों में विदेश मंत्रालय की ज़रूरतों को ध्यान में रखकर भाषा को पढाया जाता था। 60 के दशक में दिल्ली विश्वविद्यालय में सबसे पहले सर्टिफिकेट कोर्स की शुरुआत स्पेनी दूतावास की सहायता से हुयी। 1971 में प्रोफेसर सुसनिग्धा डे एवम अंतोनियो बेनिमेलिश साग्रेगा ने जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में स्पेनी भाषा केन्द्र की शुरुआत की जिसमे डिप्लोमा तथा स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम को शिक्षण आरम्भ किया गया था। इसके अलावा 50 तथा 60 के दशक में रामकृष्ण मिशन कोलकाता तथा भारतीय विद्या भवन ने भी स्पेनी भाषा के कोर्स शुरू किये।

शिक्षाशास्त्र में हाल ही में बड़े पैमाने पर विभिन्न विषयों में नस्ल और सामाजिक अन्याय के 'शिक्षण' होते रहें हैं। फिर भी अकादमिक संस्थानों को बड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है क्योंकि काफ़ी हद तक यह इस बात से अनजान है कि वास्तव में नस्ल और सामाजिक अन्याय कैसे काम करते हैं। इसी तरह, भारतीय शैक्षणिक परिदृश्य में एक विदेशी भाषा के साहित्य के रूप में लैटिन अमेरिकी साहित्य के शिक्षण

को समस्या की वास्तविक पहचान के संदर्भ में हमेशा गंभीर और चुनौतीपूर्ण निहितार्थों का सामना करना पड़ा है।

इस प्रकार, यह देखने की आवश्यकता है कि कोई व्यक्ति अपने साहित्य के माध्यम से ऐतिहासिक रूप से कम प्रतिनिधित्व वाली आबादी के अनुभवों का विश्लेषण में मदद करने के लिए एक एपिस्टेमोलॉजिकल और मेथडलाजिकल उपकरण को कैसे स्पष्ट रूप से कह सकता है और समझ सकता है। इसलिए वर्तमान शोध प्रस्ताव इस मामले को सम्बोधित करने का प्रयास करता है।

यदि इन सभी संस्थानों के पाठ्यक्रमों की सामग्री का अवलोकन करे तो पता चलता हैं यह पाठ्यक्रम भाषा को सिखाने, भाषा के उपयोग के प्रमुख तरीकों को प्रमुखता देते हैं। भाषाई ज्ञान को अत्यधिक परिपक्व तथा सुदृढ़ बनाने के लिए पाठ्यक्रम में इतिहास, संस्कृति, खेल कूद, साहित्य, राजनीति इत्यादि विषयों को भी शामिल किया गया। स्नातक तथा परास्नातक पाठ्यक्रमों में जो साहित्यिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सामग्री प्रयोग की जाती है उनमे गोरे लोगों और मेस्तिसो के बारे में जानकारियों को सम्मिलित किया गया। परन्तु जहाँ तक नस्लवाद जैसे गंभीर मुद्दे का प्रश्न हैं उस पर बहुत व्यापक सामग्री का अभाव देखने को मिलता है। नस्लवाद को हमारी कक्षाओं में उप-पाठ के रूप में भी सम्मिलित नहीं किया गया है, क्योंकि एफएलटी (विदेशी भाषा शिक्षण) , साहित्य या संस्कृति-सभ्यता पाठ्यक्रमों में नस्ल का मुद्दा किसी विशेष ध्यान के योग्य नहीं माना गया है।

भारतीय विश्वविद्यालय का कोई भी स्पेनी शिक्षण पाठ्यक्रम इसका खुलासा कर सकता है। यहाँ तक कि एफएलटी में भी, विभिन्न भाषी देशों में भाषा के उपयोग या क्षेत्रीय विविधताओं को सम्बोधित किया जाता है। साहित्य में सिद्धांत या सामग्री के रूप में नेग्रिट्यूड को बिल्कुल भी शामिल नहीं किया गया है। इस थीसिस के अंत में अभ्यास पुस्तक का उद्देश्य किसी भी भारतीय विश्वविद्यालय के एमए स्तर (पोस्ट ग्रेजुएशन डिग्री) के छात्रों के लिए एक पूरक सामग्री बनाना है। इसलिए इस शोध का महत्त्व 20वीं सदी के साहित्य के सर्वाधिक विहित ग्रंथों में नस्ल के विषय को अग्रभूमि में रखना है।

यह थीसिस अपने ऐतिहासिक संदर्भ में नस्लवाद का भी तर्क देती है और लैटिन अमेरिका के सबसे महत्त्वपूर्ण विचारकों के सिद्धांत पर भी आधारित है। यह मुद्दा थीसिस की विशिष्टता और पथप्रदर्शक एजेंडा रहा है। इसके अलावा, हिंसा, भेदभाव और शोषण की सामाजिक संरचना के मामलों को करीब से समझने के लिए, भारत में जाति के विषय के आगे नस्ल का सवाल ऑफसेट किया गया है।

लैटिन अमेरिका में नस्लवाद एवम उसके इतिहास का एक संशिप्त परिचय

प्राचीन काल से ही दुनिया के तमाम देशों के समाज किसी न किसी आधार पर आपस में बटे रहें हैं, इस बटवारें के विभिन्न कारण हैं जैसे जाति, धर्म, लिंग, नस्ल, एथ्निसिटी इत्यादि, अत्याचार शोषण को समाज में यथास्थिति बनाए रखने के लिए इन कारणों को एक उपकरण के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता रहा है। यदि लैटिन अमेरिकी देशों के समाज में नस्लवाद की खोज करें तो यह किसी भी अन्य देशों की तुलना में अधिक जटिल प्रतीत होता है। लैटिन अमेरिकी समाज के विभाजन के कई

आयाम हैं, जो इसे और अधिक जटिल और क्रूर बनाते हैं। लैटिन अमेरिका की सामाजिक संरचना को समझने के लिए औपनिवेशिक और पूर्व-औपनिवेशिक इतिहास को देखना होगा। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि उपनिवेशवादी हमेशा अपने उपनिवेश के समाज को नियंत्रित करने और वर्चस्व स्थापित करने के लिए विभाजित करते हैं, और स्पेनी उपनिवेशवादी लैटिन अमेरिका में उपनिवेश स्थापित करने के बाद से ऐसा ही करते रहे हैं, उन्होंने लैटिन अमेरिकी लोगों को नस्ल की एक जटिल पदानुक्रमित प्रणाली में वर्गीकृत किया। लैटिन अमेरिका में जातियों की व्यवस्था सामाजिक-नस्लीय वर्गीकरण से कहीं अधिक जटिल थी। इसने अर्थशास्त्र और कराधान सहित जीवन के हर पहलू में एक बड़ी भूमिका निभाई। उपनिवेशवादियों को निम्न सामाजिक-नस्लीय श्रेणियों के लोगों से अधिक कर और श्रद्धांजलि भुगतान की उम्मीद थी। लोगों के इस जटिल विभाजन का उपयोग सामाजिक नियंत्रण के लिए किया जाता था और समाज में व्यक्ति के महत्त्व को भी निर्धारित करता था। नस्ल की चार मुख्य श्रेणियाँ थीं: (1) प्रायद्वीपीय, स्पेन में पैदा हुआ एक स्पैनियार्ड; (2) क्रियोल, नई दुनिया में पैदा हुए स्पेनिश मूल का व्यक्ति; (3) इंडियन, एक व्यक्ति जो अमेरिका के मूल निवासियों का वंशज है; और (4) नीग्रो, काले अफ्रीकी मूल का व्यक्ति, आमतौर पर एक गुलाम या उनके स्वतंत्र वंशज।

लैटिन अमेरिकी समाज में यह वर्गीकरण केवल इन चार श्रेणियों में ही सीमित नहीं है, इसकी 16 उप श्रेणियाँ भी हैं। लैटिन अमेरिकी समाज में विभाजन केवल ‘सिस्तेमा दे कास्तास’ में ही सीमित नहीं है, बल्कि कई अश्वेत लोगों जैसे एफ्रो-कुबाना,

मूलनिवासी , इंडियनस और गाउचोस में भी विभाजित है। यह विभाजन पिरामिड संरचना के रूप में है, जिसमें सबसे ऊपर स्पेनियों की एक छोटी संख्या, उनके नीचे मिश्रित जाति के लोगों का एक समूह है और नीचे एक बड़ी आबादी मूलनिवासी लोगों की है।

लैटिन अमेरिका में उपनिवेशवाद का प्रभाव एवम मूलनिवासियों का संघर्ष

औपनिवेशीकरण तब होता है जब एक व्यक्ति या एक देश को दूसरे लोगों द्वारा या किसी अन्य देश द्वारा विजित राष्ट्र में बुनियादी सामाजिक संरचनाओं को समाप्त और कमजोर करके और उन्हें विजयी राष्ट्र के लोगों के साथ बदल दिया जाता है। उपनिवेशवाद के दौरान उपनिवेशवादियों ने न केवल उपनिवेशित लोगों की अधिकांश भूमि और संसाधनों को लूटा, बल्कि उनकी सांस्कृतिक विरासत को भी लूटा। उपनिवेशवादियों ने अपनी संस्कृति, भाषा और धर्म को उपनिवेश की भूमि पर थोपने के लिए बहुत कठोर नीतियाँ लागू कीं, इस भयानक प्रक्रिया में मूलनिवासी लोगों नेअपनी पारंपरिक भाषा, संस्कृति और पहचान खो दी।

1492 में यूरोपीय लोगों द्वारा लैटिन अमेरिका पर आक्रमण से पहले, लैटिन अमेरिका के स्वदेशी लोगों ने अपने पारंपरिक ज्ञान और भूमि के ज्ञान के माध्यम से अपने जीवन के तरीको का आनंद लिया। यूरोपीय लोगों द्वारा उपनिवेशीकरण के बाद स्वदेशी लोगों ने अपने रीति-रिवाजों, परंपराओं, प्राचीन पुराने ज्ञान, दर्शन और सबसे महत्त्वपूर्ण अपनी पहचान को खोना शुरू कर दिया।

डीकोलोनियालिटी एक ऐसी प्रक्रिया को संदर्भित करता है जहाँ एक उपनिवेशित लोग अपनी पारंपरिक संस्कृति को पुनः प्राप्त करते हैं, ख़ुद को लोगों के रूप में फिर से परिभाषित करते हैं और अपनी विशिष्ट पहचान को फिर से स्थापित करते हैं। आनिबाल किखानो, वाल्टर मिन्योलो, और एनरिके दुसेल जैसे थिंक-टैंक ने उपनिवेशवाद की प्रक्रिया की घोषणा करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ये विचारक एक स्वदेशी परिप्रेक्ष्य से सांस्कृतिक प्रथाओं और शिक्षण इतिहास के नवीनीकरण को बढ़ावा देते हैं। परिणामस्वरूप स्वदेशी लोग इतिहास की ताकतों को समझ रहे हैं जिन्होंने आज के शासन को आकार दिया है। वे चुनिंदा पश्चिमी तरीकों को समझने के साथ-साथ स्वदेशी ज्ञान, मूल्यों और जानने के तरीकों की खोज, नामकरण और प्रसारण कर रहे हैं। वे वर्तमान समय की चुनौतियों को प्रभावी ढंग से सम्बोधित करने के लिए स्वदेशी और पश्चिमी ज्ञान, मूल्यों और जानने के तरीकों दोनों को लागू कर रहे हैं और अपना रहे हैं।

उपनिवेशवाद की समाप्ति के विचार स्वदेशी लोगों को व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों के रूप में अपने जीवन पर सकारात्मक नियंत्रण बना रहे हैं। उन्हें इस पर निर्माण करना चाहिए कि वे सांस्कृतिक रूप से कौन हैं और इतिहास को स्वदेशी दृष्टिकोण से समझते हैं। सांस्कृतिक शक्तियों पर पुनः दावा और निर्माण सभी स्वदेशी लोगों और अन्य आदिवासी समूहों के लिए एक सुरक्षित व्यक्तिगत और सांस्कृतिक पहचान में योगदान देता है। उपनिवेशीकरण के माध्यम से हुए नुक़सान का शोक और उपचार सामूहिक कल्याण और आत्मनिर्णय की दिशा में एक और क़दम है।

व्यापक क्षेत्र जिसके अंतर्गत अनुसंधान/शोध समस्या आती है

एपिस्टेमोलॉजिकल डिकोलोनाईजेसन पर बातचीत करते हुए, वर्तमान थीसिस का मुख्य उद्देश्य नस्ल के अध्यापन के बहुत से एजेंडे के साथ शिक्षण सामग्री उत्पादन को विकसित करना है। हालांकि शिक्षण सामग्री का उत्पादन सामान्यत भाषा को शिक्षित करने के लिए होता है, परन्तु इसका उपयोग अन्य शैक्षणिक एजेंडा के लिए भी किया जा सकता है। इसलिए वर्तमान परियोजना / प्रोजैक्ट में एक दोहरा भाव शामिल है: पहला, आधुनिक ज्ञान की सीमित स्थिति और उपनिवेशवाद से उनके सम्बन्ध को उजागर करने के लिए किसी भी यूरोसेंट्रिक विशेषाधिकारों के बाहर लैटिन अमेरिकी साहित्य का स्थानांतरण और दूसरा, एक अन्य सोच जो बहुलता की मांग करती है और अंतरसांस्कृतिक संवाद, विशेष रूप से दक्षिण के भीतर।

सैद्धांतिक ढांचा

सैद्धांतिक ढांचा / थ्योरी आनिबाल किखानो, एनरिक डसेल और वाल्टर मिग्नोलो पर आधारित होगा। एडवर्ड सईद, गायत्री स्पिवक और होमी भाभा के उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धांत के विपरीत, जो किसी भी कुल या सार्वभौमिक प्रतिमानों की ज्ञानमीमांसा सम्बंधी पूछताछ में संलग्न हैं और जो फूको, लैकन और देरिदा के यूरोपीय उत्तर-संरचनावाद पर आधारित हैं, डीकोलोनियलटी एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के विभिन्न महत्त्वपूर्ण आख्यानों की आलोचना और सक्रियता से उधार लेता है ("कट्टरपंथी राजनीतिक और ज्ञानमीमांसा सम्बंधी बदलाव") । इस समझ के तहत, ज्ञानमीमांसा का एक भौतिक आयाम होना चाहिए, न कि राजनीतिक अर्थव्यवस्था की संरचनाओं का,

बल्कि उन लोगों के भौतिक अनुभव जिन्हें आधुनिकता द्वारा ज्ञान के उत्पादन से बाहर रखा गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

अध्ययन के दो उद्देश्य हैं सबसे पहले यह राष्ट्र और राष्ट्रवाद के लैटिन अमेरिकी डिस्कोर्स के भीतर से एक ज्ञानमीमांसा के मामले के रूप में नस्ल के मुद्दों का पता लगाएगा, जैसे कि खोसे मारती, निकोलास गियेन्न और रोबेर्तो फेर्नान्देस रेतामार के नस्लवाद और उससे सम्बंधित हाशिए पर धकेल दिए गए लोगों की आवाजों को बुलंद करने के लेख भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण होंगे। दूसरा पहलू यह पता लगाने पर केंद्रित होगा कि कुछ प्रमुख लेखक और कवि विभिन्न दृष्टिकोणों से नस्लवाद को कैसे व्यक्त करते हैं। अंत में इसका उद्देश्य एक पूरक पाठक को सामने लाना है जिसमें इन सभी लेखकों के चयनित पाठों के साथ-साथ पठन बोध अभ्यास शामिल हैं। यह आशा की जाती है कि इस तरह की पूरक सामग्री का उत्पादन उपनिवेशवाद और पूंजी के एजेंडे को प्रभावी ढंग से उजागर करेगा, पाठकों को अधिक सहानुभूति और समझ के प्रति संवेदनशील बनाएगा। यह इस थीसिस का सबसे नवीन और पथप्रदर्शक एजेंडा है। इसलिए उद्देश्य न केवल अकादमिक बल्कि सामाजिक और राजनीतिक भी है। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि यह शोध अकादमी को बाहर की दुनिया से जोड़ने में योगदान देने वाला है।

इस शोध के लिए उपयोग किए जाने के लिए प्रस्तावित प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत में बीसवीं सदी के लैटिन अमेरिकी साहित्य के सभी विहित / कैनन ग्रंथ शामिल होंगे जैसा कि स्कोप और उद्देश्य में उल्लिखित है। इसके अलावा, पाओलो फ़्रेयर की पेडागॉजी ऑफ़ अप्रेस्ट और फ़्रांट्ज़ फैनॉन की द रेचिड ऑफ़ द अर्थ भी अंक के चयन के मानदंड को स्पष्ट करने के लिए महत्त्वपूर्ण होंगे। यह देखते हुए कि थीसिस केवल विहित ग्रंथों को छूती है, प्रतिनिधित्व, वैधता और शासन के कई मुद्दों को यहाँ सम्बोधित नहीं किया गया है। फिर भी यह माना जाता है कि लाइनों के बीच में इंटरटेक्सुअलिटी खेलती है। प्रशंसापत्र साहित्य और नकारात्मकता के साहित्य जैसे रिगोबर्टा मेनचू, नैन्सी मोरेखोन और ओची क्यूरियल को छोड़ दिया गया है।

विधिवत चलने की पद्धति

इस शोध प्रस्ताव की चुनौती यह है कि ग्रंथों का चयन ज्ञान-मीमांसा उपनिवेशवाद / एपिस्टेमिक डीकोलोनियालिटी के कुछ मानदंडों के आधार पर करना होगा; ऐसा चयन उनकी पूर्व-ज्ञान स्थिति पर आधारित होगा। विश्लेषण का उद्देश्य उनकी व्याख्या करना नहीं होगा, बल्कि यह तर्क देना होगा कि उनका चयन कैसे उचित है और वे सबसे अदृश्य को दृश्यता देने के मुख्य ज्ञानमीमांसा सम्बंधी मुद्दे का अनुपालन कैसे करते हैं। यह निश्चित रूप से गुणात्मक और अत्यधिक तर्कपूर्ण होगा। उपर्युक्त सभी बातों के आधार पर प्रस्तुत शोध प्रबंध में निम्नलिखित प्रश्न पूछे गए हैं। जैसे कि बीसवीं शताब्दी के लैटिन अमेरिकी साहित्य के विहित ग्रंथों में नस्ल के मुद्दों को उजागर करने वाली शिक्षण सामग्री को विकसित करने की आवश्यकता क्यों है? ऐसे कौन से लेखक और उनकी

कृतियाँ हैं जो अश्वेत स्वरों के उद्धरण सबसे उपयुक्त रूप से प्रस्तुत करते हैं? लेखकों के कार्यों से उद्धरणों के चयन का मानदंड क्या होना चाहिए? प्रत्येक पाठ को ऐसी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त करने के लिए किस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए जो सबाल्टर्न आवाज़ों से हमारी सुनवाई में सकारात्मक सहानुभूति और मानवीयता को दर्शाती हैं? इन टेक्स्ट को पढने में लगातार दिलचस्पी कैसे क़ायम रखी जा सकती है? अंत में यह आशा की जाती है कि इस थीसिस ने इन शोध प्रश्नों का उचित उत्तर दिया है।

पाठ्यक्रम प्रस्तावना

अध्याय 1: कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर और नस्ल / रेस की लिखित ज्ञानमीमांसा

यह अध्याय नस्ल के संदर्भ में एपिस्टेमिक कोलोनियलटी ऑफ़ पॉवर के पूरे एजेंडे का जायजा लेने के लिए आनिबाल किखानो, एनरिके डुसेल और वाल्टर मिन्योलो पर आधारित है। यह-यह समझाने की भी कोशिश की गयी है कि कैसे एक नया शैक्षणिक एजेंडा तैयार किया जा सकता है ताकि ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन और डीकोलोनियलटी की ओर बढ़ सके।

अध्याय 2: नस्ल आधारित शिक्षण सामग्री की न्यायोचित प्राथमिकता

प्रस्तावित थीसिस एक व्यक्तिगत कहानी या इतिहास पर चर्चा नहीं करेगा, यह एक मानव समुदाय की कहानियों का वर्णन करेगा, जिसने सदियों से शोषण, उत्पीड़न, उत्पीड़न, अस्वीकृति और असमानता को सहन किया है। मनुष्य के जीवन में जातिवाद के इतिहास को ऐतिहासिक कालक्रम के रूप में नहीं बल्कि सांस्कृतिक यात्रा के रूप में

दिखाया और प्रस्तुत किया जाता है। थीसिस में न केवल लैटिन अमेरिका के राजनीतिक परिवेश पर चर्चा की गई है बल्कि लैटिन अमेरिका के जीवन में नस्लवाद को समझाया और दिखाया गया है।

अध्याय 3: ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन: आलोचनात्मक सोच के कुछ वैचारिक मुद्दे।

यहाँ हम कल्पना के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। लैटिन अमेरिका में फिक्शन ने हमेशा इतिहास को चुनौती दी है। इन कार्यों में नस्ल बहुवचन और संवादात्मक रही है। इसलिए चयनित ग्रंथ इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है । लैटिन अमेरिकी लेखकों यह खोसे मारती, निकोलस गियेन, रोबेर्तो फेर्नांदिज़ रेतामर, खोसे कार्लोस मरियातेगी, खोसे मारिया अर्गेदास के कार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिसमें वे अपने संघर्षों और अधिकारों की कहानी बता रहे हैं।

अध्याय 4: बीसवी शताब्दी के लैटिन अमेरिकी साहित्य में नस्ल पर एक शिक्षण सामग्री।

यह अध्याय लैटिन अमेरिकी देश की सामाजिक संरचना और साहित्य पर केंद्रित होगी। यद्यपि, इस विषय पर साहित्य और पुस्तक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, फिर भी एक संक्षिप्त पुस्तक की आवश्यकता महसूस की जाती है, जो एक पाठ्य पुस्तक के रूप में विषय पर विस्तृत जानकारी प्रदान करती है। इस पाठ का उद्देश्य नस्ल पर मौलिक अवधारणा प्रदान करना है और साहित्यिक ग्रंथों पर एक प्रश्न पत्र तैयार करके विषय को

सुरुचिपूर्ण ढंग से समझाया गया है ताकि छात्र मानव इतिहास में नस्लवादी मानसिक संरचना को समझने के लिए बेहतर परिप्रेक्ष्य विकसित कर सकें।

शोध प्रश्न।

उपरोक्त सभी बातों के आधार पर प्रस्तुत शोध प्रबंध में निम्नलिखित प्रश्न पूछे गए हैं।

1. बीसवीं सदी के लैटिन अमेरिकी साहित्य के विहित ग्रंथों में नस्ल के मुद्दों को उजागर करने वाली शिक्षण सामग्री विकसित करने की आवश्यकता क्यों है?

2. ऐसे कौन से लेखक और उनकी कृतियाँ हैं जो सबाल्टर्न स्वरों के उद्धरण सबसे उपयुक्त रूप से प्रस्तुत करते हैं?

3. लेखकों के कार्यों से उद्धरणों के चयन का मानदंड क्या होना चाहिए?

4. प्रत्येक पाठ को ऐसी प्रतिक्रियाएँ प्राप्त करने के लिए किस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए जो सबाल्टर्न आवाज़ों से हमारी सुनवाई में सकारात्मक सहानुभूति और मानवीयता को दर्शाती हैं?

5. इन आयतों को पढ़ना जारी रखने में लगातार दिलचस्पी कैसे क़ायम रखी जा सकती है?

उम्मीद है, इस थीसिस में यहाँ उठाए गए शोध प्रश्नों को सम्बोधित किया जाएगा और हल किया जाएगा। लेकिन इन सवालों से परे भी इस क्षेत्र में आगे के शोध की गुंजाइश बहुत व्यापक है।

REFRENCES:

Alcoff, Linda. “A Epistemologia Da Colonialidade De Mignolo.” *Epistemologias do Sul* 1.3 (2017): 33–59. Print.

Bandy, Joe, M. Brielle Harbin, and Amie Thurber. “Teaching Race and Racial Justice: Developing Students’ Cognitive and Affective Understanding.” *Teaching and Learning Inquiry* 9.1 (2021): 117–138. *Teaching and Learning Inquiry*. Web.

Burdumy, Alexander, and Christine Bohlander. “Designing and Delivering a Programme Of Reading Skills Classes to Postgraduate Students.” *Journal of Teaching English for Specific and Academic Purposes* (2018): 245. *Journal of Teaching English for Specific and Academic Purposes*. Web.

Camelo, Diego Fernando. “Enrique Dussel y El Mito de La Modernidad.” *Cuadernos de Filosofía Latinoamericana* 38.116 (2018): 97–115. *Cuadernos de Filosofía Latinoamericana*. Web.

Castillejos Rodríguez, Francisco Javier. “Enrique Dussel: Entre Latinoamérica y La Hermenéutica de La Otredad.” *Agora: papeles de Filosofía* 38.1 (2018): n. pag. *Agora: papeles de Filosofía*. Web.

Charan, Amita, and Jitendra Kumar Verma. “Characterizing Social Media Contents for Regulating Hate Crimes and Cyber Racism against Marginalized and

Dalits in India." *2020 International Conference on Computational Performance Evaluation, ComPE 2020*. Institute of Electrical and Electronics Engineers Inc., 2020. 864–871. *2020 International Conference on Computational Performance Evaluation, ComPE 2020*. Web.

Chetty, Naganna, and Sreejith Alathur. "Racism and Social Media: A Study in Indian Context." *International Journal of Web Based Communities* 15.1 (2019): 44–61. *International Journal of Web Based Communities*. Web.

Ciappina, Damián, and Patricia Alejandro. "Entrevista a Enrique Dussel." *Cuadernos Filosóficos / Segunda Época* 14 (2018): 102–117. *Cuadernos Filosóficos / Segunda Época*. Web.

Constance-Huggins, Monique. "Intersection of Race, Gender, and Nationality in Teaching about Race and Racism." *Reflective Practice* 19.1 (2018): 81–88. *Reflective Practice*. Web.

Delgado, L. Elena, Rolando J. Romero, and Walter Mignolo. "Local Histories and Global Designs: An Interview with Walter Mignolo." *Discourse* 22.3 (2000): 7–33. *Discourse*. Web.

Donoso-Miranda, Paz. "Pensamiento Decolonial En Walter Mignolo: América Latina: ¿transformación de La Geopolítica Del Conocimiento?" *Temas De Nuestra América Revista De Estudios Latinoaméricanos.* 30.56 (2013): 45–56. Print.

ENUMAH, LISETTE. "White Supremacy and Teacher Education: Balancing Pedagogical Tensions When Teaching about Race." *Teachers College Record* 123.1 (2021): n. pag. *Teachers College Record*. Web.

Escobar, Arturo. “Worlds and Knowledges Otherwise: The Latin American Modernity/ Coloniality Research Program.” *Cultural Studies* 21.2–3 (2007): 179–210. *Cultural Studies*. Web.

Fanon, Frantz, 1925-1961. The Wretched of the Earth. New York :Grove Press, 1968.

Foucault, Michel, 1926-1984. Discipline and Punish : the Birth of the Prison. New York :Pantheon Books, 1977.

Gandarilla Salgado, José Guadalupe, María Haydeé García-Bravo, and Daniele Benzi. “Two Decades of Aníbal Quijano’s Coloniality of Power, Eurocentrism and Latin America.” *Contexto Internacional* 43.1 (2021): 199–222. *Contexto Internacional*. Web.

Krishnaswamy, Revathi. “Transmodern Liberation Philosophies: B. R. Ambedkar and Enrique Dussel.” *Interventions* (2021): n. pag. *Interventions*. Web.

Kumar, Vivek. “Nature and Dynamics of Caste Discrimination on Higher Education Campuses: A Perspective from Below.” *Cross-Currents: An International Peer-Reviewed Journal on Humanities & Social Sciences* 7.1 (2021): 34–40. *Cross-Currents: An International Peer-Reviewed Journal on Humanities & Social Sciences*. Web.

Maldonado-Torres, Sergio. “Walter Mignolo: Una Vida Dedicada Al Proyecto Decolonial.” *Nomadas* 26 (2007): 186–195. *Nomadas*. Web.

Mignolo, Walter D. “Coloniality Is Far from over, and so Must Be Decoloniality.” *Afterall* 43 (2017): 38–45. *Afterall*. Web.

Mignolo, Walter. “The Geopolitics of Knowledge and the Colonial Di√erence.” *Coloniality at Large*. Duke University Press, 2021. 225–258. *Coloniality at Large*. Web.

Misoczky, Maria Ceci Araujo. “Contributions of Aníbal Quijano and Enrique Dussel for an Anti-Management Perspective in Defence of Life.” *Cuadernos de Administracion* 32.58 (2019): n. pag. *Cuadernos de Administracion*. Web.

Freire, Paulo, 1921-1997. Pedagogy of the Oppressed. New York :Continuum, 2000.

Pino, Julio César. “A Twenty-First-Century Agenda for Teaching the History of Modern Afro-Latin America and the Caribbean.” *Latin American Perspectives* 31.1 (2004): 39–58. *Latin American Perspectives*. Web.

Quijano, Aníbal. “Coloniality of Power and Eurocentrism in Latin America.” *International Sociology* 15.2 (2000): 215–232. *International Sociology*. Web.

Quijano, Aníbal. “Coloniality and Modernity/Rationality.” *Cultural Studies* 21.2–3 (2007): 168–178. *Cultural Studies*. Web.

Quintero, Pablo. “Notas Sobre La Teoría de La Colonialidad Del Poder y La Estructuración de La Sociedad En América Latina.” *Papeles de Trabajo. Centro de Estudios Interdisciplinarios en Etnolingüística y Antropología Socio-Cultural* 19 (2020): 1–15. *Papeles de Trabajo. Centro de Estudios Interdisciplinarios en Etnolingüística y Antropología Socio-Cultural*. Web.

Rai, Rohini. “From Colonial ‘Mongoloid’ to Neoliberal ‘Northeastern’: Theorising ‘Race’, Racialization and Racism in Contemporary India.” *Asian Ethnicity* 23.3 (2022): 442–462. *Asian Ethnicity*. Web.

Rivas, Axel, and Belen Sanchez. “Race to the Classroom: The Governance Turn in Latin American Education. The Emerging Era of Accountability, Control and Prescribed Curriculum.” *Compare* 52.2 (2022): 250–268. *Compare*. Web.

Rodrigo-Mateu, Amparo. “Language, Culture and Interculturality through Narratives with Learners of Spanish as a Foreign Language.” *Bellaterra Journal of Teaching and Learning Language and Literature* 11.4 (2018): 41–58. *Bellaterra Journal of Teaching and Learning Language and Literature*. Web.

Rodríguez Reyes, Abdiel. “Enrique Dussel y El Pensamiento Crítico de La Liberación.” *Brocar. Cuadernos de Investigación Histórica* 40 (2016): 199–220. *Brocar. Cuadernos de Investigación Histórica*. Web.

Sambaraju, Rahul. “‘We Are the Victims of Racism’: Victim Categories in Negotiating Claims about Racism against Black-Africans in India.” *European Journal of Social Psychology* 51.3 (2021): 467–484. *European Journal of Social Psychology*. Web.

Telles, Edward. *Pigmentocracies: Ethnicity, Race, and Color in Latin America*. University of North Carolina Press, 2014. *Pigmentocracies: Ethnicity, Race, and Color in Latin America*. Web.

"Thinking and Engaging with the Decolonial: A Conversation between Walter d. Mignolo and Wanda Nanibush." *Afterall* 45 (2018): 24–29. *Afterall*. Web.

Tomlinson, Brian. "Materials Development for Language Learning and Teaching." *Language Teaching* Apr. 2012: 143–179. *Language Teaching*. Web.

Venkatesan, oumhya. "Violence and Violation Are at the Heart of Racism: The 2017 Debate of the Group for Debates in Anthropological Theory, Manchester." *Critique of Anthropology* 39.1 (2019): 12–51. *Critique of Anthropology*. Web.

Viveros Vigoya, Mara. "Race and Sex in Latin America, by Peter Wade." Revista Colombiana de Antropología 48.1 (2012): 279–287. Revista Colombiana de Antropología. Web.

Wade, Peter. "Racism and Race Mixture in Latin America." *Latin American Research Review* 52.3 (2022): 477–485. *Latin American Research Review*. Web.

Weinzimmer, Julianne, and Jacqueline Bergdahl. "The Value of Dialogue Groups for Teaching Race and Ethnicity." *Teaching Sociology* 46.3 (2018): 225–236. *Teaching Sociology*. Web.

Zembylas, Michalinos. "Decolonizing and Re-Theorizing Radical Democratic Education: Toward a Politics and Practice of Refusal." *Power and Education* 14.2 (2022): 157–171. *Power and Education*. Web.

अध्याय 1. कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर और नस्ल/रेस की लिखित ज्ञानमीमांसा

उपनिवेशवादी शक्तियों ने अपने विस्तार के पहले ही चरण में अपने उपनिवेशों में ऐसी संस्थाओं और विचारों का निर्माण किया जो उपनिवेशवादी प्रक्रिया को एक 'कल्याणकारी' और 'जनहितवादी' विचार के रूप में स्थापित कर सकें । जिस प्रकार से भविष्य में उपनिवेशवादी ताकतों का सामान्यीकरण हो जाता है जिसे यूरोकेंद्रियता या यूरोपीय दृष्टीकोण के नाम से जाना जाता है । ह्यूमनिज़म उपनिवेशवाद का वह मुखोटा है जिसके खिलाफ विरोध की कहीं कोई सम्भावना नहीं रहती है । साथ ही साथ उपनिवेशवादी विस्तार निरंतर ज़ारी रहता है यद्यपि इसका रूप बदलता रहता है । ऐसी ही संस्थाओ के निर्माण की प्रक्रिया के दौरान उपनिवेशवादियों ने सामाजिक वर्गीकरण के रूप में रंगभेद अथवा रेस के विचार कप स्थापित किया ; इस वर्गीकरण से उन्होंने अपने आप को श्रेष्ठ मनुष्य समझा एवं स्वयं को "श्वेत" (गोरे) के रूप में प्रस्तुत किया जबकि जिनको जीता गया उन्हें निम्न, अयोग्य और कमतर घोषित किया गया । इन लोगों को "इंडियन" या "काले" की संज्ञा दी गई जो की रेस की परिभाषा में तुच्छ और असभ्य माना जाने लगा ।

रंगभेद के आधार पर रेस के विचार ने शोषण और प्रभुत्ववादी मानसिकता को जन्म दिया जिसके माध्यम से अफ्रीका के काले लोग और अमेरिका के मूल निवासियों

के नस्लीकरण का ओचित्य स्थापित हुआ । रेस के विचार के माध्यम से उन्होंने यह बात अपने उपनिवेशों में प्रचारित और प्रसारित की कि यूरोपीय महाद्विप से आये गोरे लोग अन्य लोगों की तुलना में श्रेष्ठ हैं । पश्चिमी विचार के विद्वानों, पेशेवरों और संस्थाओं ने तय किया कि सार्वभौमिक रूप से मान्य या सामान्य ज्ञान के रूप में क्या स्वीकार किया जाये और क्या न किया जाये । पश्चिमी कैनन से भिन्न ज्ञान के सभी रूपों को 'वैकल्पिक' के रूप में ब्रांडेड किया गया है, इसका अर्थ है कि यह औपचारिक, वैध ज्ञान नहीं है । इस प्रकार, स्थानीय ज्ञानमीमांसा सम्बधिंतचिंतन (एपिस्टेमे) को बहुत कम या फिर न के बराबर मान्यता दी गयी है ।

1990 के दशक में लैटिन अमेरिका के कुछ समाज शास्त्रियों ने ऐसे सिद्धांतों को विकसित किया जिसके माध्यम से सदियों पुरानी उपनिवेशवादी परिक्रिया जो अभी भी निरन्तर जारी है को चिन्हित किया और इस सिद्धांत को 'कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर' (सत्ता की औपनिवेशिकता) नाम दिया गया जिसके प्रमुख सिद्धांतकार पेरू देश के शिक्षाविद् और सामजशास्त्री आनिबाल किखानो हैं । वह पहचान[1] से सबंधित प्रश्नो और मुद्दों को उठाते हैं जो रेस की अवधारणा पर आधारित है । किखानो की दृष्टि में यह अवधारणा यूरोपीय और अमरीकी उपनिवेशीकरण से उत्पन्न हुई है और शीघ्र ही क्षेत्र में विद्यमान सामाजिक अनुक्रम के वर्गीकरण का केंद्रीय तत्व बन गई । अस्मिता या पहचान की अवधारणा चारों तरफ रेस से जुड़ी हुयी है, और साथ ही प्रभुत्व का एक

[1] आइडेंटिटी का अनुवाद मुश्किल है, क्यूंकि हम यहाँ पर रंगभेद या रेस पर आधारित आइडेंटिटी की बात रख रहें हैं . लैटिन अमेरिका में रेस की परिभाषा आनिबाल किखानो से प्रेरित हैं . आगे इस थीसिस में आइडेंटिटी के सन्दर्भ में अस्मिता शब्द का

अभिन्न अंग भी है । रेस की अवधारणा कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर की अवधारणा की रचना करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है । इसमें एक उपनिवेश या नवउपनिवेश के ऊपर एक शासक का प्रभुत्व है साथ ही उसमें एक आंतरिक प्रभुता भी है जिसके अंतर्गत समाज के शेष भाग पर शासक अभिजन का प्रभुत्व है जिसमें विशेषतः विभेदीकृत रेस की रचना योगदान करती है । परिणाम स्वरूप कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर एक सुसंगत राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय राज्यों के लेटिन अमेरिका में निर्माण के सम्मुख मुख्य चुनौती बन जाती है । इसी सिद्धांत को बाद में शिक्षाविद् वालटर डी. मिन्योलो , दार्शनिक एनरिके डुसेल एवं रामोन ग्रोस्फोगुएल ने और विकसित और व्यापक बनाया ।

कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर को स्वदेशी या दक्षिणी सिद्धांत भी कहा जाता हैं। स्वदेशी सिद्धान्त (स्वदेशी का शाब्दिक अर्थ है जो अपने देश से है, लेकिन व्यवहारिक संदर्भों में इसका अर्थ आत्मनिर्भरता के रूप में लिया जा सकता है।) इस मान्यता के साथ शुरू होते है कि सामाजिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में ज्ञान मीमांसा सम्बधिंत चिंतन/ एपिस्टेमे को शुरू करने के लिए उन्हें स्वायत्तता की आवश्यकता होती है । इस सिद्धांत के विचारको का यह मानना है कि यूरोपीय उपनिवेशवाद के माध्यम से पश्चिम का ज्ञान शेष दुनिया पर थोपा गया है जो कि देशज/मूलनिवासियों के लिए अप्रासंगिक और अनुपयोगी बना रहता है । ये थोपा हुआ ज्ञान लोगों के न केवल चेतन बल्कि अवचेतन मन पर भी कब्जा जमाए बैठा है जिसका परिणाम ये होता है कि लोग अपनी

वास्तविक स्वतंत्रता से बहुत दूर होते जाते हैं । अतः ये विचारक स्थानीय कथाओं, साहित्यों, संस्कृतियों एवं मिथकों के भीतर से वैकल्पिक समाजशास्त्र की रूप रेखा तैयार करने की के लिए चर्चा करते हैं ।

कोलोनियलिटी ऑफ़ पॉवर का तर्क हैं कि अगर पश्चिम में समाजविज्ञान अपनी दार्शनिक विचारधाराओ, सिधान्तो के संबंद्धता के माध्यम से आगे बढ़ें हैं, तो अन्य संस्कृतियों और दार्शनिक प्रणालियों में भी ऐसा करना संभव है । यह पश्चिम की ज्ञानमीमांसा सम्बधिंत चिंतन पद्दति/ एपिस्टेमे को स्वयं की ज्ञानमीमांसा सम्बधिंत चिंतन से विस्थापित करना चाहते है । इनका मानना है कि यह ऐसे सिद्धान्तों और अमूर्तताओं को निर्मित कर सकते हैं जो स्थानीय इतिहास और सामाजिक जीवन के प्रति संवेदनशील हो और जो पश्चिम /उत्तरी क्षेत्र के समाजशास्त्र द्वारा निर्मित किए गए सार्वभौमिक समाजशास्त्र के दायरे के बाहर समाजशास्त्र तैयार करने के वैकल्पिक तरीकों को निर्मित करने में मदद करता है ।

कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर एक विस्तृत चर्चा

कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर , पेरू के समाजशात्री आनिबाल किखानो द्वारा विकसित की गयी एक ऐसी श्रेणी हैं जो वैश्विक शक्ति के स्वरुप के बारे में बताती है, जो आधुनिक विश्व प्रणाली के साथ उभरती है । यह प्रणाली पूरी तरह से रेस/नस्लीय वर्गीकरण पर आधारित हैं जो पूरी दुनिया में श्रम बल, धन और भूमि के नियंत्रण और शोषण की अनुमति प्रदान करती है ताकि पूंजीवाद को विकास और मजबूती मिल सके

। लैटिन अमेरिका के कई लेखकों के लिए यह श्रेणी एक बुनियाद के तौर पर है जिन्होंने श्रेणियों और अवधारणाओं का एक ढांचा विकसित किया जो आधुनिकता[2] से जुडी आम धारणाओं को एक समस्या के रूप में देखता है । उनका तर्क है की औपनिवेशिकता आधुनिकता का एक काला या बुरा पक्ष है (कोलोनियलिटी इज़ द डारकर साइड ऑफ़ मॉडर्निटी)(mignolo,2011 , p, 1) ।

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि हम एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जिसमें आधुनिक-औपनिवेशिक शक्ति का सम्पूर्ण तंत्र, जिसने पिछले लगभग 500 वर्षों से पूरी दुनिया पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया हुआ है, अब एक संरचनात्मक संकट का सामना कर रहा है । यह मुश्किलें और कठिनाइयाँ सम्पूर्ण शक्ति की संरचना के मूलभूत बुनियाद / आधार में पैदा हुई है : कठिनाइयाँ सभी अंगों और स्तरों पर उत्पन्न हुईं है जैसे - लिंग संबंधो, श्रम संबंधों, राजनितिक संबंधों, अंतराविषयिक संबंधों और प्राकृतिक संबंधों में, जिनका समाधान वर्तमान ऐतिहासिक व्यवस्था के अंतर्गत नहीं किया जा सकता है । अतः सामाजिक सहअस्तित्व के नए स्वरुप के निर्माण की आवशयकता हैं । मुख्यतः यह अंतराविषयिक संरचनाओं का संकट है और विशेष रूप से ज्ञान के उन तरीकों का, जो सामाजिक विज्ञान पर लागू होतें है ।

[2] माडर्निटी का अनुवाद समस्यात्मक है क्यूंकि लैटिन अमेरिका में मॉडर्न या आधुनिक उस तरह से नहीं है जैसा की भारत में है . भारत में माडर्निटी एन्लाइटन्मन्ट से परिभाषित होती है जबकि लैटिन अमेरिका में रेनसान्स से . राइटिंग और रैशनलिज़म उपनिवेशवाद से जुड़ा है, क्यूंकि जब स्पेनिश लोग अमेरिका में आये उस समय राइटिंग और रैशनलिज़म वह क्राइटेरिया था जिससे नस्ल या रेस के अवधारणा कि उत्पत्ति हुयी .

1970 के दशक के बाद से, हमने सामाजिक विज्ञानों में परिवर्तनों का एक जटिल रूप देखा है । ये परिवर्तन बताते है की वो कौन से ढंग है जिन्हें पुनः संगठित करने की आवश्यकता है । बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में सामाजिक विचारों में होने वाले सम्भवतः महत्वपूर्ण परिवर्तनों का सबसे अधिक खुलासा करने वाला परिक्षण "गुलबेंकियन कमीशन की रिपोर्ट" में मिलता है (वालरस्टीन, 1996)। इस रिपोर्ट से पता चलता है कि ज्ञान के यूरोसेन्ट्रिक/यूरोकेंद्रित संरचनाओं को कैसे दोनों ही केंद्र और परिधि पर स्थित देशों में खत्म किया गया है, और कैसे सामाजिक और ऐतिहासिक वास्तविकता को समझने के लिए दर्शन/ स्कूल ऑफ़ थॉट एक विकल्प के रूप में उभरे ।

यूरोकेन्द्रीयता और उसकी अंतहीन जड़ें

यूरोसेंट्रिज़्म/यूरोकेन्द्रीयता शब्द एक विश्व-दृष्टिकोण को दर्शाता है, जो स्पष्ट रूप से, यूरोपीय इतिहास और मूल्यों को "सामान्य" और दूसरों से श्रेष्ठ बनाता है, जिससे वैश्विक पूंजीवादी विश्व प्रणाली के भीतर यूरोपीय प्रभुत्व को उचित ठहराया जा सके है । लैटिन अमेरिकी आलोचकों ने यूरोसेंट्रिज़्म / यूरोकेन्द्रीयता को अच्छे से विश्लेषित किया है जो ज्ञानमीमांसीय चिंतन पध्दति के आयामों को जोड़ता है, और वो हैं यूरोसेंटरिक/यूरोकेंद्रित ज्ञान, आर्थिक पहलुओं जैसे कि वैश्विक पूंजीवाद और आर्थिक शोषण का संगठन । (quijano,2000) यूरोकेन्द्रीयता के केंद्र में चिंतन का एक द्विआधारी तरीका है जो एक सफेद/श्वेत , प्रगतिशील, आधुनिक और सभ्य यूरोपीय पहचान का निर्माण करता है और कालोनियों में एक काले / स्वदेशी, अविकसित,

पारंपरिक और बर्बर अन्य के रूप में भिन्नता दर्शाता है । इन पध्दतियों के साथ शक्ति का निरंतर संगठन, दोनों ओर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर और समाज के भीतर उपस्थित है, जिसे अनिबल किखानो ने "कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर " (Quijano,2002) कहा है।

यूरोसेंट्रिज़्म के कई महत्वपूर्ण आलोचक, जैसे कि एडवर्ड सईद ओरिएंटलिज़्म/प्राच्यवाद (1978) या समीर अमीन के यूरोसेंट्रिस्म (1988), पूरब के साथ यूरोपीय संपर्क और पूरब का एक अलग इकाई के रूप में निर्माण के माध्यम से ये दोनों आलोचक यूरोपीय केंद्रित ज्ञान के उत्पादन पर ध्यान केंद्रित करते है । ओरिएंट/पूरब और ऑक्सिडेंट/पश्चिम के बीच औपनिवेशिक विभाजन और स्थानीयकरण के परिणाम स्वरुप ये लैटिन अमेरिकी अनुभव को अपने में समाहित नहीं कर पाता है (mignolo, 1998) । जबकि दोनों उत्तर और लैटिन अमेरिका को पश्चिम का हिस्सा माना जाता है, वे (अरब देश और लैटिन अमेरिका) काफी अलग-अलग तरीकों से यूरोसेंट्रिस्म से प्रभावित थे और हैं । वैश्विक अर्थव्यवस्था में उनके प्रवेश के संबंध में, केंद्रीय अंग के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका का ऐतिहासिक अनुभव, उदाहरण के लिए, कई लैटिन अमेरिकी देशों से काफ़ी भिन्न है वो देश जिनके उत्पादक क्षेत्रों को संगठित किया गया था ताकि (नव)औपनिवेशिक शक्तियों की जरूरतों को पूरा किया जा सके। जिस तरह से एक क्षेत्र में, विकास के नाम पर, यूरोकेंद्रित मूल्यों की संरचना अंतर-अमेरिकी संबंधों में स्पष्ट हो जाती है । यहां, अमेरिकी संस्थाएँ लैटिन अमेरिकी समाजों में उदार लोकतंत्र और विकास के नाम पर हस्तक्षेप करती हैं ताकि उन्हें विकसित उत्तरी राज्य के

सार्वभौमिक भूमिका मॉडल के करीब लाने में मदद मिल सके । एक अंतर-सामाजिक स्तर पर, पोस्टकोलोनियल/उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययनों ने बताया है कि कैसे रेस के रूप में यूरोकेंद्रित श्रेणियां , उत्तर और दक्षिण अमेरिका दोनों में व्यक्तियों के बीच संरचना संबंधों को जारी रखती हैं, उदाहरण के लिए, प्रवासी श्रमिकों का शोषण ।

प्रो एंटून डी बैट्स, यूरोकेन्द्रीयता को निम्लिखित पाँच रूपों में बाटतें है- (1)सत्ता मीमांसा संबंधी/ओंटोलॉजिकल ये सिधांत कहता है की “गैर-पश्चिमी इतिहास का अस्तित्व नहीं है” । गैर-पश्चिमी इतिहास की वास्तविकता से सम्बन्धित विचारों को जर्मन दार्शनिक ‘जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल’ ने प्रचारित किया इन विचारों ने गैर-पश्चिमी संस्कृतियों के प्रति पश्चिमी विस्तार को सही ठहराने का काम किया, जिन्हें "आदिम" के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। "आदिम" लोग "इतिहास के बिना लोग" थे क्योंकि उन्हें ऐतिहासिक एजेंसी के लिए अक्षम माना जाता था । उनके अतीत को अराजकता, बर्बरता, गरीबी और स्थिरता के उत्तराधिकार के रूप में देखा गया था । उनके बारें में ऐसा सोचा जाता था की वो अतीत को समझने के लिए तर्क की बजाय मिथकों को विकसित करें। उनके बारे में यह भी माना जाता था की वो समय की एक चक्रिये अवधारणा को मानते है अतः वे एक ठहरे हुए वर्तमान में रहते है ।

(2) ज्ञानमीमांसा सम्बंधित चिंतन पध्दति/एपिस्टेमोलॉजिकल यह विचार दावा करता है कि “गैर-पश्चिमी इतिहास को जाना ही नहीं जा सकता है” इसके पीछे यह तर्क दिया जाता है कि ज्ञान लिखित स्रोतों से ही प्राप्त किया जाता है । यह पध्दति उस

प्रधानता का परिणाम है जो सदियों से लिखित स्रोतों को दी गई थी । जहां गैर-पश्चिमी लिखित स्रोत उपलब्ध नहीं थे, वैकल्पिक स्रोतों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया ; कुछ वैकल्पिक स्रोतों को संरक्षित किया गया था, परन्तु इन स्रोतों को भी आमतौर पर औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा अनदेखा या नष्ट कर दिया गया ।

(3) नीति संबंधी/एथिकल इस सिधांत का मानना है की "गैर-पश्चिमी इतिहास का मूल्य बहुत कम है " यह नैतिकता यूरोकेंद्रिता का शास्त्रीय रूप था । जब भी गैर-पश्चिमी इतिहास के प्रकरणों/घटनाओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया, तो उनका मूल्यांकन पश्चिमी अवधारणाओं और मानदंडों के अनुसार किया गया और उन्हें स्टीरियोटाइप किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ऐसे लोकप्रिय पूर्वाग्रह थे: "तीसरी दुनिया अभी भी मध्य युग में जी रही है" या तीसरी दुनिया की अगली दो नस्ले भी उस विकाश तक नहीं पहुंच पाएंगी जो पश्चिम ने पिछले एक हज़ार वर्षों में प्राप्त किया है ।

(4) उपयोगिता संबंधी/ यूटिलि'टेअरिअन् विचार का मत है की "गैर-पश्चिमी इतिहास प्रासंगिक या उपयोगी नहीं है । गैर-पश्चिमी इतिहास के बारे में अज्ञानता के कारण गैर-पश्चिमी उपलब्धियों और विशेष रूप से पश्चिमी संस्कृति में कई गैर-पश्चिमी योगदानों को कम करके आंका गया । यह भुला दिया गया कि कई योगदान यूरोप के बाहर से भी आए थे, और यह माना गया कि ये योगदान केवल पश्चिमी के द्वारा ही किया गया ।

(5)शिक्षात्मक/डाइडेक्टिक विचार का मत है की "गैर-पश्चिमी इतिहास बहुत कठिन और बहुत शर्मनाक है" यह सिद्धांतवादी यूरोएन्स्ट्रिज्म अन्य संस्कृतियों के बारे में पढ़ाने के तौर-तरीकों पर बात करता है जो स्वाभाविक रूप से स्कूलों में बहुत प्रबल होता है । निस्संदेह, गैर-पश्चिमी समाजों के बारे में उनकी अलग-अलग सोच के साथ विशिष्ट शिक्षण समस्याओं को जन्म देती है। इस प्रकार एंटून डेबेट्स के वर्गीकरण के आधार पर संक्षेप में यह कहा जा सकता है की यूरोकेन्द्रीयता वह स्पष्ट विचार है जो यह मानता है की गैर पश्चिमी इतिहास आदिम, अनुपयोगी, मूल्यहीन, होने के कारण अस्तित्वविहीन है साथ ही साथ दुनिया की व्यापकता के अध्यन में आप्रासंगिक है । तमाम विचारों एवं व्याख्यान को पढ़ने और समझने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर के यूरोकेन्द्रीयता वह पक्षपातपूर्ण विचारधारा है जिसमे यूरोप को सारी अच्छी चीजों की जन्मस्थली माना जाता है तथा हर चीज को यूरोप के नजरिये से देखने की कोशिश की जाती है ।

यूरोकेन्द्रीयता अपने आप को ज्ञान का अथवा जानने का एकमात्र वैधानिक स्वरूप के रूप में लागू करती है इसके परिणाम स्वरूप वह जनसंख्या जो सदियों तक उपनिवेशों का शिकार रही उनके ज्ञान मीमांसा सम्बंधित चिंतन पद्धति हाशिए पर आ गई इस प्रकार इस जनसंख्या को निम्नवर्गीय बना दिया और इनके ज्ञान के तौर-तरीके जो इन्होंने सदियों से संचित और विकसित किए थे, उनके सामाजिक और सांस्कृतिक

अस्तित्व की पहचान थे उन्हें बड़े ही हिंसक तरीकों से कुचल दिया गया ताकि वह भावना जो उन्हें तुच्छ बनाती है को परीपादित और प्रचारित किया जा सके ।

औपनिवेशवाद/ कोलोनिएलिटी और वी-ओपनिवेशवाद/ डीकोलोनिएलिटी क्या है

सबसे पहले अनिबल किखानो द्वारा 'आधुनिकता / ओपनिवेशवाद' की अवधारणा का प्रयोग किया गया जिसे बाद में वाल्टर मिग्नोलो द्वारा विकसित किया गया ।

> "*उपनिवेशवाद एक अवधारणा है जो औपनिवेशिकता को आधुनिकता के व्युत्पन्न के रूप में बताता है। इस अवधारणा में आधुनिकता पहले आती है, इसके बाद उपनिवेशवाद होता है। दूसरी ओर, औपनिवेशिक काल का तात्पर्य है कि, अमेरिका में, उपनिवेशवाद उन्नीसवीं शताब्दी की पहली तिमाही की ओर समाप्त हो गया। इसके बजाय औपनिवेशिकता मानती है, पहला, वह औपनिवेशिकता आधुनिकता का गठन करता है। परिणामस्वरूप, हम अभी भी उसी शासन में रह रहे हैं।*
>
> (mignolo,2008,2002)

ये समाजशास्त्री आधुनिकता / ओपनिवेशवाद' की अवधारणा को एक ही मानते है या यों कहें की ये पश्चिमी सभ्यताओं के दो स्तंभ हैं और इन स्तंभों को ज्ञान की एक जटिल और विविध संरचना (ईसाई धर्मशास्त्र और सांसारिक विज्ञान और दर्शन शास्त्र) द्वारा प्रोसाहित किया जाता है । यह विशिष्ट संस्थानों की ऐसी ईमारत है जिसे ज्ञान की क्रमबद्ध संरचना से निर्मित किया गया है : ज्ञान को हमेशा ऐसे संस्थानों और एक्टर की

आवशयकता होती है जो ज्ञान की संरचना का संरक्षण, विस्तार, और परिवर्तन सत्ता के ओपनिवेशी सांचे / मैट्रिक्स भीतर करते रहें ।

औपनिवेशवाद शक्ति की ऐसी संरचना है जो उपनिवेशित लोगों को ऐसी एजेंसी या स्वतंत्रता नहीं देता जिसके माध्यम से वे लोग अपना कोई दृष्टिकोण या परिपेक्ष्य निर्धारित कर सकें , विशेष रूप से एक ऐसा परिप्रेक्ष्य जो ये बताये की वे लोग औपनिवेशिक शोषण की एक वस्तु मात्र हैं । विचारों को स्वतंत्रता न देने का एक मात्र अर्थ है ओपनिवेशिक एजेंडे और उद्देश्यों को छुपाना.. जेसा की अनिबल किखानो स्पष्ट करते हैं “उपनिवेशवाद पूंजीवादी शक्ति के वैश्विक पैटर्न के संवैधानिक और विशिष्ट तत्वों में से एक है । यह दुनिया की आबादी के एक नस्लीय वर्गीकरण (रेस पर आधारित) को शक्ति के उक्त पैटर्न की आधारशिला के रूप में स्थापित किया गया है, और प्रत्येक सतह, क्षेत्रों और आयामों, दोनों सामग्री और व्यक्तिपरक, दैनिक अस्तित्व और सामाजिक सीढ़ी में संचालित होता है”(2007: 93)।

औपनिवेशिकता को एक ऐसी विश्व सत्ता संरचना के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें कुछ लोग विशेषाधिकार प्राप्त कर लेते हैं और आधुनिकता की छतरी के नीचे ऐसे विशेषाधिकारों को प्राप्त कर लेते हैं जिनके माध्यम से वे जीवन के सभी आनन्द का लाभ प्राप्त करते हैं जबकि बाकी लोग उसी आधुनिक विश्व व्यवस्था के काले पक्ष में सभी नकारात्मक परिणामो को सहन करते हैं । यह आधुनिकता केवल

यूरोकेंद्रित आधुनिकता है जिसके नकारात्मक परिणामों की कोई निश्चित सीमा नहीं है, जैसे उपनिवेशवाद, गुलामी, नस्लवाद/रेसिज़्म, रंगभेद हैं । इन सभी परिणामो की प्रकृति वैश्विक परजीवी परिक्रियाए है जो ये बताती हैं की ओपनिवेश्वाद का इतिहास उपनिवेशवाद से बड़ा है । इस विचारधारा के समाजशास्त्री पहले के कई उत्तर – ओप्रिवेश्वदियों की तरह ही औपनिवेशवाद और आधुनिकता के बीच के रिश्तों पर ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, जिसके पीछे इनका ये तर्क था की इससे दुनिया के आधिकांश हिस्सों का इतिहास समझा जा सकता है । आधुनिकता ज्ञानमीमांसा का एक ऐसा ढांचा है जिसे यूरोपीय औपनिवेशिक परियोजना/ प्रोजेक्ट से अलग नहीं किया जा सकता ।

डिकोलोनियल का अर्थ है पहले से विद्यमान ज्ञान की सम्पूर्ण संरचना एवम् बनावट से अलग होना ताकि एक नई ज्ञानमीमांसा सम्बंधित चिंतन पद्दति का पुनर्गठन हो सके । उदहारण स्वरुप : सोचने के तरीके, भाषाएं, जीवन के तरीके और दुनिया में होने का भाव ताकि आधुनिकता के व्याख्यान शास्त्र को नाकारा और उखाड़ा जा सके और औपनिवेशिकता/कोलोनीयाल्टी के तर्क को लागू किया सके । डिकोलोनियल विचारकों के अनुसार औपनिवेशिकता एक ज्ञानमीमांसा सम्बंधित चिंतन पद्दति है/ एपिस्टेमे जो यूरोकेंद्रियता की विभिन्न समीक्षाओ में विद्यमान हैं । यह किसी एक निश्चित भूगोलिक क्षेत्र में सिमित नहीं है जिसका अर्थ है की ज्ञानमीमांसा चिंतन पद्दति का प्रभुत्त्व किसी एक निश्चित क्षेत्र तक सिमित नहीं हैं । डिकोलोनियल विचारकों का मत है की

प्रत्येक भूगोलिक स्थान पर, पश्चिम सहित ज्ञानमीमांसा पद्दति की हिंसा का इतिहास रहा है ।

डिकोलोनियल विचारक इसे एक आन्दोलन के रूप में देखत हैं और ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसके माध्यम इसके उद्देश्यों को बहुत ही सरलता से स्पष्ट किया जा सके जैसे: “ज्ञान की अवज्ञा “ (epistemic disobedience) तथा “ज्ञान से पृथकता” (epistemic delinking) (वाल्टर मिग्नोलो 2001 , 2007). "अलगाव / पृथकता/ डिलिंकिंग " से अभिप्राय प्रभुत्वशाली विचारों की कल्पित सार्वभौमिकता को खिसकाने /बदलने / डगमगाने का एक प्रयास है (उदाहरण के लिए "आधुनिकीकरण" "पश्चिम" आदि) और नॉनडोमिनेंट वर्ल्डव्यू की सार्वभौमिकता की तरफ एक विस्थापन/शिफ्ट है, जानने/होने की बहु अवधारणाओं के साथ एक विश्वव्यापी परियोजना के रूप में (Mignolo 2007, 543) । वही आनिबाल किखानो इसे “ज्ञानमीमांसा संबधित चिंतन पद्दति का पुनर्निर्माण” कहते हैं (किखानो 2007: 176) । यह यूरोकेंद्रित ज्ञान के एकाधिकार और सत्यता और पश्चिमी संस्कृति की श्रेष्ठता की स्पष्ट रूप से आलोचना करते है और इस विचार का विरोध करते है कि पश्चिमी यूरोपीय चिंतन के तरीके सार्वभौमिक है । इससे स्पष्ट हो जाता है की यह डिकोलोनियल की अवधारणा ज्ञानमीमांसा पद्दति की अवज्ञा और स्वतंत्र विचारों के बारे में बात करती है ताकि मुख्यधारा और प्रभुत्ववादी डिस्कोर्स को उजागर किया जाये , जिसमें वे खुद को औपनिवेशिकता के एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत करती हैं, दूसरे शब्दों में । यह उन डिस्कोर्स की वास्तविकता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाती है जो खुद को यूरोकेद्रीयता के

विकल्प के रूप में पेश करती हैं । डिकोलोनियलिटी के सिद्धांतकार स्थानीय, गैर-पश्चिमी ज्ञान परंपराओं के विचारों और अवधारणाओं को सामाजिक विज्ञान के लिए एक स्रोत के रूप में स्वीकारते हैं, साथ ही दोनों स्तरों “ज्ञान के उत्पादन” और “राजनीतिक अर्थव्यवस्था” के विकल्प की कल्पना भी करते हैं ।

ज्ञान की ओपनिवेशिकता/ कोलोनियलिटी ऑफ़ नॉलेज और उसका स्वरुप

डिकोलोनियल बुद्धिजीवी तर्क देते है की तीसरी दुनिया या ग्लोबल साउथ के विद्वान, राजनेता, शिक्षाशास्त्री , विद्यार्थी और तमाम लोग विचारों और ज्ञान के लिए यूरोकेंद्रित ज्ञानमीमांसा सम्बंथित चिंतन पद्दति पर निर्भर रहते हैं । जैसा की वाल्टर डी मिन्योलो कहते है की “ज्ञान का औपनिवेशवाद प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित है चाहे वो इंजीनिरिंग ,मनोवैज्ञानिक , प्रबंधन या फिर दर्शनशास्त्र का ही क्षेत्र हो । महत्वपूर्ण तर्कों के माध्यम से ज्ञान के इन सभी रूपों ने दुनियां को अनुशाषित और सरलीकृत किया अतः इसकी पहचान करना बहुत ज़रूरी हो जाता है की 'ज्ञान की औपनिवेशिकता' शक्ति के उपनिवेशवाद का एक कारण है” (Quijano, 2000; Mignolo, 2000). यूरो-अमेरिकी विद्वानों ने अकादमिक विषयों का आविष्कार किया और सिद्धांतों और विचारधाराओं के प्रारूप को तेयार किया जिसे ग्लोबल साउथ के लोगों ने जस का तस आत्मसात कर लिया जो आगे चलकर इन्ही लोगों की पहचान और अस्मिता के लिए एक खतरा बन गया । परिणामस्वरुप, वैश्विक मीडिया और आकादमिक जगत में ग्लोबल साउथ के ज्ञान को पिछड़ा या आयतित के रूपमे दिखाया गया ।

निर्भरता सिद्धांतकारों और राजनीतिक अर्थव्यवस्था विश्लेषकों का मानना है की पश्चिम ने उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के माध्यम से दुनिया के गैर-पश्चिमी समाजों पर अपने ज्ञान और संस्कृति को लागू किया है । यह एक आपराधिक तरीका है जिसमें पश्चिम ने एकमात्र मान्य ज्ञान का दिखावा किया है जबकि दुनिया के अन्य समुदायों में अंधविश्वास है ऐसा प्रचारित किया । यूरो-अमेरिका इतिहास भी यही दावा करता है कि एशिया, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका में केवल परंपरा है ज्ञान नहीं हैं । ज्ञान का ओपनिवेश और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद अकादमी में दशकों से सामयिक मुद्दे रहे हैं और इसे तीसरी दुनिया की दीर्घकालिक समस्याओं के रूप में देखा जा सकता है । इस लेख में, ज्ञान की औपनिवेशिकता की बारीकियों को समझने के लिए तीसरी दुनिया के विश्लेषणात्मक उपकरणों जेसे निर्भरता सिद्धांत और राजनितिक अर्थव्यवस्था विश्लेषण के बजाय, ग्लोबल साउथ में मुक्ति के दर्शन के रूप में डिकोलोनियलिटी को नियोजित किया जा रहा है । डिकोलोनियल औपनिवेशिकता के लंबे प्रभाव से जाग गई है और पहले के विश्लेषणात्मक उपकरणों की सीमित दृष्टि से अलग देखने में सक्षम है ।

ज्ञान का ओपनिवेश्वाद कैसे काम करता है हमें ये जानने की जरुरत है । पश्चिमी दार्शनिकों और अन्य बुद्धिजीवियों ने इस मिथक के माध्यम से खुद को बौद्धिक अधिकार दिया है कि वे और केवल वे ही वैध ज्ञान का उत्पादन करते हैं । वे लोग औपनिवेशिक और नस्लीय विचारधारा को समर्थन देने वाले हैं ये विचारधारा

केवल सत्य को प्रसारित नहीं करती हैं बल्कि सत्य को छिपाने के लिए झूठ का भी उत्पादन करती हैं ।

डीकोलोनियल समाजशास्त्री ऐसा मानते है की पश्चिमी दार्शनिक/बुद्धिजीवी उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद जैसे अनैतिक अपराधों के लिए ज्ञान का उपयोग करते हैं । वे लोग भाषा में हेर फेर करते है ज्ञान की शब्दावलियों को अपने अनुसार गढ़ते है जेसे "मूल अमेरिकियों की भूमि पर अवैध कब्जे" को भाषाई और "अमेरिकी की खोज" के रूप में प्रस्तुत किया गया था । उपनिवेशवाद को एक सभ्य मिशन और साम्राज्यवाद के रूप में तीसरी दुनिया के आधुनिकीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया था । एनरिके डूसेल कहते हैं की खोज "ढकने" जैसे विचारों से संलिप्त है जो इस बात पर जोर देता है की इंडियंस को ऐतिहासिक रूप से ही बदल दिया जाये । यह विचार हमें समस्या को सटीक रूप से तैयार करने की अनुमति देता है । इंडियन्स के अतीत में, और आज भी, तथाकथित तीसरी दुनिया की वास्तविकता और विचार, उसके समाजशास्त्र, दर्शन, धर्मशास्त्र, इत्यादि को , यूरोपीय तर्कसंगतता के अभ्यास द्वारा सर्वसम्मति से बाहर रखा गया और विकृत किया गया ।

यूरेकेंद्रित इतिहास की कई किताबें दावा करती हैं कि खोजकर्ताओं और मिशनरियों द्वारा ग्लोबल साउथ की कुछ जगहों और ज़मीनों की “खोज” की गई थी, लेकिन उन जगहों पर ऐसे लोग थे जो सदियों से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद से पहले बाकी दुनिया को जानते थे । और वे लोग सांस्कृतिक रूप से काफी उन्नत थे

तोड़ना-मरोड़ना, चुप कराना एवम मिटाना ज्ञान की औपनिवेशिकता की अन्य रणनीतियाँ हैं । सिद्धांत और विचारधाराएँ चश्मे की तरह हैं । वे बड़ी चीजों को छोटी और छोटी चीजों को बड़ी बना सकती हैं । वे अदृश्य चीजों को भी दृश्यमान बना सकती हैं और कुछ दृश्यमान चीजें अदृश्य ।

ज्ञान की औपनिवेशिकता उन सिद्धांतों और विचारधाराओं का उपयोग करती है जो वैश्विक दक्षिण के लोगों और स्थानों के बारे में कुछ सच्चाइयों को विकृत, चुप करती हैं और मिटाती हैं । जिस तरह से लोगों और स्थानों का अध्ययन किया जाता है वह महत्वपूर्ण है क्योंकि अध्ययन के कुछ तरीके, जैसे कि तमाशा, सच्चाई को उजागर करने के बजाय छिपाना, कुछ झूठों को अतिरंजित करना और कुछ मिथकों का आविष्कार करना। मनगढ़ंत अधिकार का उपयोग करते हुए और यूरोकेन्द्रियवाद के " ज्ञानमीमांसा विशेषाधिकार", ज्ञान की औपनिवेशिकता दावा करती है । यूरोकेंद्रित विचारको द्वारा इस तरह से पश्चिमी मिथक और झूठ, वैज्ञानिक ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया । पश्चिमी ज्ञान की निष्पक्षता के झूठे दावे के बाद ज्ञान की औपनिवेशिकता सार्वभौमिकता के झूठे दावे करती है । उदाहरण के लिए अमेरिका में जो सत्य है वह दुनिया की सभी मानवता के लिए सत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

अमेरिकी राजनीतिक और आर्थिक हितों को अक्सर मानव और विश्व हितों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यही कारण है कि डिकोलोनियल विद्वानों ने पश्चिमी

ज्ञान को निरपेक्षता कहा है, जो इसे सार्वभौमिक ज्ञान के रूप में सूर्य के तहत हर किसी पर थोपने की अनुमति देता है। पश्चिमी विचारों और मिथकों को सत्य, उद्देश्य, सार्वभौमिक और वैज्ञानिक ज्ञान की प्रस्तुति औपनिवेशिकता का एक प्रमुख पहलू है। अतीत से ही पश्चिमी विचारकों और उनके विचारों को वैज्ञानिकता का अधिकार दिया गया है। जिसने भी यूरोकेंद्रित मानदंडों के अनुसार शिक्षा अर्जित नहीं की है उसको शिक्षित नहीं कहा जाता है अर्थात शिक्षित होना का अर्थ है यूरोपीय या अमेरिकीकृत होना है, लेकिन जो लोग इस प्रकार से शिक्षित हैं मानसिक रूप से गुलाम ही हैं ।

वर्तमान समय में भी यूरोप केंद्रित ज्ञान को अनुवादों और दोहराव के उत्पादन के माध्यम से अंग्रेजी बोलने व समझने वाली जनसंख्या के बीच परोसा जा रहा है लैटिन अमेरिका में यूरोप केंद्रित ज्ञान मीमांसा पद्धति से जुड़ी किताबों का अनुवाद स्पेनिश और पुर्तगाली में बहुत सहजता से उपलब्ध हैं और स्थानीय स्तर पर वैधता प्राप्त कर चुका है । जिसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि लेटिन अमेरिका के पास आवश्यक अभिव्यक्ति और प्रबंधकीय क्षमता का अभाव है जिसकी वजह से स्थानीय ज्ञान को पूरे महाद्वीप में फैलाने में असमर्थता होती है, जो संस्थाएं ऐसे ज्ञान को फैला रही हैं हैं वह बहुत छोटी है या फिर बिल्कुल नई है इनकी तुलना में सार्वभौमिक ज्ञान को फैलाने वाली संस्थाएं जो अकादमिक जर्नल और पुस्तकें छापती हैं उनकी अमेरिका और यूरोपीय विश्वविद्यालयों में काफी मांग है, जिनको बड़े पूंजी पतियों के द्वारा संचालित किया जाता है। पश्चिमी ज्ञान का प्रभुत्व इस कदर फैला हुआ है की ज्ञान को फैलाने वाली नई

तकनीके जैसे डिजिटल या इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफार्म पर उपलब्ध पश्चिमी ज्ञान भी लैटिन एक्सेंट में उपलब्ध है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है की स्थानीय स्तर पर उत्पन्न और विकसित ज्ञान को "सार्वभौमिक ज्ञान" के निर्माता शक्ति के औपनिवेशवाद के रास्तों के बीच स्थान नहीं मिल रहा है।

ज्ञान की स्वतंत्रता का आन्दोलन

डिकोलोनियल एथिक्स में विचारों की नैतिक शुद्धता या अनैतिकता एक महत्वपूर्ण विषय है । इससे पहले कि वे निष्पक्षता और वैज्ञानिकता का दावा करें, सभी विचारकों और उनके विचारों को उनकी विषय-वस्तु और सीमाओं को स्पष्ट करना चाहिए । सभी सत्य और असत्य, ‘अन्यथा’ किसी जगह और समय में कहीं न कहीं स्थित होते हैं , वे सार्वभौमिक और मानवीय ज्ञान नहीं हो सकते हैं । सभी ज्ञान एक प्रकार का निर्माण और एक कहानी है जो सभी लोगों और सभी स्थानों के लिए केवल और केवल सत्य नहीं हो सकती है । वो शक्ति जो न केवल ज्ञान बल्कि ज्ञान और जानने के पीछे की राजनीति को समझने में सहायक हो ऐसी ज्ञानमीमांसा स्वतंत्रता की आवश्यकता है । ज्ञान निष्कपट और निरपराध नहीं होता है; यह सत्ता संबंधों, आर्थिक और राजनीतिक असमानताओं से युक्त होता है । यह केवल जानने के लिए पर्याप्त नहीं है, यह मायने रखता है कि जो ज्ञात है वह कैसे जाना जाता है । ज्ञान उत्पादन के तरीके और तरीके राजनीतिक रूप से चार्ज किए जाते हैं । यह ज्ञान की विडंबना में है कि फ्रांत्ज फैनोन ने अपने क्लासिक को समाप्त कर दिया; ब्लैक स्किन

व्हाइट मास्क, वाक्य के साथ: "ओह, मेरा शरीर मुझे हमेशा एक आदमी बनाता है जो सवाल करता है!" डिकोलोनियल ज्ञान और ज्ञानमीमांसा संबंधी स्वतंत्रता का एक बड़ा हिस्सा सवाल पूछ रहा है और प्रभुत्ववादी विचारों के नकली आधिकार को चुनौती दे रहा है ।

लैटिन अमेरिका में ज्ञानमीमांसा या ज्ञान मीमांसा सम्बंधित चिंतन पद्दति की स्वतंत्रता का अर्थ है जहाँ लैटिन अमेरिकी लोग है वहाँ के बारे में लिखना , सोचना , सिद्धांत बनाना , और उस दुनिया की व्याख्या करना जिसे यूरोकेंद्रियेवाद ने छुपा दिया । उपनिवेशी तंत्र ने कुछ मनुष्यों को मनुष्य ही नहीं समझा जिसका सामन्य अर्थ यह था की उनके ज्ञान , अनुभव और ज्ञानमीमांसा को महत्वहीन घोषित कर दिया गया । लेकिन अब दास, विस्थापित, उपनिवेशित और नस्लीय लोगों के वंशजों ने दुनिया भर में अकादमियों में प्रवेश कर लिया है,जहाँ से वो पुरजोर घोषणा करते कि वे मनुष्य हैं, उनके जीवन का भी अर्थ है और वे वैध और तर्कसंगत ज्ञान प्रणालियों में पैदा हुए हैं वर्तमान ज्ञानमीमांसा संकट को पार कर मानवता की सहायता करने में सक्षम हैं । साथ ही , वे संज्ञानात्मक न्याय के लिए विविध संघर्षों कर रहें है , जो इक्कीसवीं सदी पर मंडरा रही है । डिकोलोनियल थ्योरी के माध्यम से समाजशास्त्रियों का मानना है की एक बार लैटिन अमरीकी लोग ज्ञानमीमांसा की स्वतंत्र का प्रयोग कर अपने देसज ज्ञान को अगर पुनः स्थापित करते हैं तो वो लैटिन अमेरिका में राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और अन्य स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते है ।

देसज ज्ञान और संस्कृति के माध्यम से अस्मिता के निर्माण का साहित्य

अफ़्रीकी-अमेरिकी मूल के मशहूर रैपर जे ज़ी ने अपने एक वक्तव्य में कहा था की पहचान एक ऐसी जेल है जिससे आप कभी बच नहीं सकते, लेकिन अपने अतीत को भुनाने का तरीका इससे भागना नहीं है, बल्कि इसे समझने की कोशिश करना है, और इसे एक नींव के रूप में इस्तेमाल करना है । इसी वक्तव्य को आगे बढ़ाते हुए सदियों तक उपनिवेशित रहे रहे लोगों की मुक्ति और स्वतंत्रता का मार्ग उन्हें अपने अतीत में ही तलाशना होगा। यदि व्यक्तिगत रूप से सारे पूर्वाग्रहों को हटा कर गैर पक्षपाती रूप से उपनिवेशी देशों के उपनिवेश बनने से पहले के इतिहास को गंभीरता और बोद्धिकता के साथ अध्यन किया जाये तो उनके इतिहास में ज्ञान, कला,स्थापत्य और विज्ञान के मत्वपूर्ण संस्कृतियों का पता चलेगा जिनके माध्यम से वहाँ के लोग उस समय के अनुरूप प्रगति पथ पर अग्रसर थे । परन्तु उपनिवेशी ताकतों ने अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए उनके प्रत्येक क्षेत्र पर हमला किया जिसका परिणाम ये हुआ की समय के साथ उनकी सभ्यता और संस्कृति हमेशा के लिए समय के अंधकार में विलुप्त हो गयी । उपनिवेशी ताकतों ने देशज ज्ञान और संस्कृति को केवल समाप्त ही नहीं किया बल्कि उसका मखौल भी उड़ाया अतः यह अति अवश्यक हो जाता है की अपने पूर्वजो के ज्ञान और संस्कृति जो सदियों से हासिये पर ठकेल दी गयी है उसे पुनः जीवित किया जाये और अपनी खोयी हुयी पहचान को पुनः प्राप्त किया जैसा की पाउलो फ्रेइरे अपनी पुस्तक ‘उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र’ में कहते है "... पहचान/अस्मिता की भावना

के बिना, कोई वास्तविक संघर्ष नहीं हो सकता ..." अतः यह कहा जा सकता है की अपनी पहचान को केंद्र में रख कर ही संघर्ष की सही और सटीक रूप रेखा तेयार की जा सकती और अपने पूर्वजों के ज्ञान को अँधेरे से निकाल कर उजाले में लाया जाए क्यूंकि अपने पूर्वजों के ज्ञान और संस्कृति को खोने का अर्थ है अपनी पहचान और अस्मिता की हत्या कर देना ।

अतीत में झाँकने का तात्पर्य यह है की हम जान सकें की हमारा वजूद क्या है, हम कौन हैं , हमारी जड़ें कहाँ है , हमारा अतीत ही हमारा एक साधन है जिसके माध्यम से हम अपने अस्तित्व का सटीक आंकलन कर सकते है और ऐसा करके ही हम बुद्धिमानी और चतुरता से अपने आने वाले भविष का निर्माण कर सकते । हमें एक ऐसे भविष की कामना और निर्माण करना होगा जिसमे हमें और हमरी आने वाली नस्लों को किसी भी प्रकार कोई वर्चस्व और दासता का सामना न करना पड़े । ऐसे सुंदर भविष के निर्माण के लिए सामग्री हमें अपने साहित्य से लेनी होगी वो साहित्य जो हमारी अस्मिता के सम्मान और गौरव के लिए लिखा गया, वो साहित्य जो न केवल हमारी इतिहास की हिंसक और बर्बर घटनाओं का ब्येरा देता है बल्कि हमारी उस खोई संस्कृति का बखान भी करती है जो बर्बर और हिंसक शासको का मुकाबला करने का साहस भी देती है ।

साहित्य में अस्मिता विमर्श का वास्तविक मुद्दा हमेशा मानवीय मुक्ति और विशाल जनजीवन के जनतांत्रीकरण का रहा है । जब तक रचनाकार का आंतरिक संघर्ष स्पष्ट, मुखर और व्यवस्थित नहीं होगा, तब तक वह बाहरी समस्याओं से लड़ नहीं सकता ।

लैटिन अमेरिका के बीसवी शताब्दी में साहित्य ने जिस गहराई और सघनता से अस्मिता के विमर्श पर जो लिखा उसमें मूलनिवासी, आदिवासी ,उत्पीडित,वंचित लोगों की चेतना को केंद्र में रखा और ऐसे मुद्दों को उठाया जिनके माध्यम से वर्चस्ववादी संस्थानों को चुनौती दी जा सके।

यह साहित्य सांस्कृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सभी स्तरों पर अधिकार और हक की मांग को लेकर हाशिए की अस्मिताओं के संघर्ष की आवाज़ को बुलंद करते हैं । साहित्य वर्ग, रेस, वर्ण, लिंग, स्थानिकता, सांस्कृतिक पहचान, विस्थापन आदि को आधार बना कर नई अस्मिताएं सामने लाता है । ये साहित्य समानता, न्याय, हिस्सेदारी और आत्मसम्मान के लिए प्रतिरोध, आंदोलन और संघर्ष को मुक्ति के मार्ग के रूप में स्थापित करता है । अस्मिता विमर्श अथवा चिंतन का अर्थ है अपने अस्तित्व का ज्ञान, जो आत्मनिर्णय और स्वयं की अभिव्यक्ति को प्रकट करता हो । अपनी स्वतंत्र अस्मिता को चिंतन के केंद्र में स्थापित करना , जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया के बराबर वर्चस्ववादी सत्ता के निरंतर प्रतिरोध में प्रकट हुई ।

समानता और स्वतंत्रता के लिए वर्चस्वकारी संस्कृति से मुक्ति आवश्यक है

किसी भी समाज में जब तक एक वर्ग का दुसरे वर्ग पर सांस्कृतिक , सामाजिक , आर्थिक एवम राजनितिक वर्चस्व कायम है उस समाज में समानता और स्वतंत्रता की बात करना बेईमानी है अतः हमें एसे मार्गों को तलाश करने की आवश्यकता है जो समाज में बराबरी स्थापित करे और वर्चस्ववादी सोच का पूर्ण नाश करे । बीसवी सताब्दी के बहुत से लैटिन अमेरिकी साहित्यकार अपने अपने साहित्य के माध्यम से हमें उन मार्गों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करते हैं जिनके माध्यम से वे लैटिन अमेरिका में अपने अस्मिता और संस्कृति की न केवल पुरजोर वकालत कर रहें है बल्कि प्रभुत्ववादी शक्तियों को चुनौती भी दे रहें हैं ।

आज जब लगभग पूरी दुनिया में लोकतान्त्रिक व्यवस्था कायम है और समाज का प्रत्येक वर्ग किसी न किसी माध्यम से अपने अतीत और सांस्कृतिक विरासत से परिचित हो रहा है ऐसे में आज के आधुनिक लोकतांत्रिक परिवेश में ऐसे साहित्य, थ्योरी , परिकल्पना ,विचार , सिधांत और ज्ञानमीमांसा की आवशयकता है जो उत्पीड़न का शिकार रहे लोगों को इतना अवसर जरूर उपलब्ध कराये कि वे इतिहास को अपने ढंग से समझने और जानने के साथ - साथ उन कारणों की भी समीक्षा कर सकें, जो उनके दमन और दासता के मूल में हैं ।

सदियों के संघर्सों और आन्दोलन के पश्चात आज जो हमें उपनिवेशों से आजादी मिली है सही अर्थों में उस आज़ादी की कोई प्रासंगिगता नहीं है यदि इस आधी आधूरी आज़ादी

को हम एक सम्पूर्ण आज़ादी में न बदल दे । पूरी आज़ादी प्राप्त करने के लिए ये आवश्यक है की हम उन बिन्दुओं का बहुत ही गहराई से अवलोकन करे जहाँ हमें असल मायने में अभी भी आज़ादी नहीं मिली है । ये साहित्य हमें उन्ही बिन्दुओं के से अवगत करते है और ऐसे माध्यमों को तेयार करने की तरकीब बताते है जिनकी सहायता से हम अपनी सामाजिक व्यवस्था जो असमानता , भेदभाव और अन्य चीजों से भरी है ,जो कई बार हमारे मौलिक अधिकारों से भी टकराती हो को दुरुस्त कर सकते हैं ।

इतिहास को नए दृष्टीकोण से पढ़ने और देखने की आवशयकता पर बल देता साहित्य

जैसा की हम जानते है इतिहास हमारी अस्मिताओं के निर्माण में अहम भूमिका अदा करता है । इस अस्मिता का निर्माण हमेशा किसी न किसी के विरोध में होता है, अर्थात एक ऐतिहासिक दुश्मन तैयार किया जाता है ताकि अस्मिता और वर्चस्व का संघर्ष हमेशा कायम रहे । तीसरी दुनिया या ग्लोबल साउथ के इतिहास में भी उस दुश्मन की पहचान करने की आवशयकता है जिसने अपनी वर्चस्ववादी नीतियों और षड्यंत्रों से देसज व मूलनिवासियों के इतिहास से उन्ही के ज्ञान और संस्कृति को विलुप्त कर दिया है । इतिहासकार अक्सर जब इतिहास लिखता है तो वो सत्ता और वर्चस्व के इशारे पर लिखता है । यहाँ जो सबसे महत्वपूर्ण सवाल है वो ये है की इतिहास कौन लिख रहा है और किसके लिए लिख रहा है , उसका नायक कौन है और खलनायक

कौन है निसंदेह नायक इतिहासकार लिखने वाले के पक्ष का होगा और खलनायक उस समाज या वर्ग का होगा जो सत्ता और प्रभुत्व को चुनौती देता है । परन्तु ग्लोबल साउथ के अकादमिक क्षेत्र चाहे वो समाजशास्त्र , दर्शनशास्त्र , इतिहास ,साहित्य या फिर कला का ही क्षेत्र क्यूँ न हो इन सभी क्षेत्रों में समाज का वो तबका जिसे सदियों तक हाशिये पर रखा गया, जिसे शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया और जिसका आर्थिक और सामजिक रूप से शोषण होता रहा अब अपनी आवाज बुलंद कर रहा है उन संस्थाओं और प्रवृत्तियों के खिलाफ जो उन्हें दासता की बेड़ियों में बांधती है । इतिहास पर सवाल खड़ा करने का मतलब है देश की विरासतों और सियासतों, ऐतिहासिक घटनाक्रमों, धर्म, संस्कृति और भाषा पर सवाल करना ।

ग्लोबल साउथ में हम देखत है की एक तरफ ऐसे लोग हैं जो यूरोकेंद्रित दृष्टीकोण से लिखे इतिहास को ही सर्वमान्य और सर्वभोमिक मान चुके है जबकि दूसरी तरफ समाज का एक ऐसा वर्ग भी है जिसे रेस /नस्ल के आधार पर शोषित किया गया और ये वर्ग इतिहास को अपनी संस्कृति ,सभ्यता और सहित्य के माध्यम से नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास कर रहा है । अतः आज के समय में ये अति आवश्यक हो जाता है की मूलनिवासियों के इतिहास को नए नज़रिए से देखा , समझा और लिखा पढ़ा जाये ।

REFERENCES:

Alcoff, Linda Martín. “Mignolo's Epistemology of Coloniality.” *CR: The New Centennial*

Amin, Samir. “The Ancient World-Systems versus the Modern Capitalist World-System.” *Review (Fernand Braudel Center)*, vol. 14, no. 3, 1991, pp. 349–85.

Amin, Samir. *Eurocentrism*. NYU Press, 1988.

Amin, Samir. *Eurocentrism: Modernity, Religion and Democracy - A Critique of Eurocentrism and Culturalism*. 2nd ed., Pambazuka Press, 2010.

Arnedo-Gómez, Miguel. “The Afrocubanista Poetry of Nicolás Guillén and Ángel Rama's Concept of Transculturation.” *Afro-Hispanic Review*, vol. 26, no. 2, 2007, pp. 9–25. *JSTOR*,www.jstor.org/stable/23054617.

Arguedas, José María, and José Luis Rouillón. *Cuentos Olvidados*. Lima, Imágenes Y Letras,1973.

Barreda-Tomás, Pedro M. “Alejo Carpentier: Dos Visiones Del Negro, Dos Conceptos De La Novela.” *Hispania*, vol. 55, no. 1, 1972, pp. 34–44. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/338243.

Berberoglu, Berch. “Wallerstein and World-Systems Theory.” *Social Theory*. Routledge, 2020. 225–230. *Social Theory*.

Boyd, Antonio Olliz. “Latin American Literature and the Subject of Racism.” *CLA Journal*, vol.57, no. 3, 2014, pp. 177–184. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/44325865.

Dahl, Anthony G. “Resolving the Question of Identity: Nicolás Guillén's ‘La Balada De Los Dos Abuelos.’” *Afro-Hispanic Review*, vol. 14, no. 1, 1995, pp. 10–17. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/23055188.

de Baets, Antoon. “Eurocentrism in the Writing and Teaching of History.” *A Global Encyclopedia of Historical Writing*, edited by Daniel Woolf, Garland Publishing, 1998, p. 298.

De la Cadena, Marisol. “Silent Racism and Intellectual Superiority in Peru.” *Bulletin of Latin American Research*, vol. 17, no. 2, 1998, pp. 143–164. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/3339226.

Delgado, L. Elena, et al. “Local Histories and Global Designs: An Interview with Walter Mignolo.” *Discourse*, vol. 22, no. 3, 2000, pp. 7–33. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41389582.

Dussel, Enrique D, et al. *Ethics of Liberation in the Age of Globalization and Exclusion*. Durham ; London, Duke University Press, 2013.

Dussel, Enrique. “Enrique Dussel: Without Epistemic Decolonization, There Is No

Dussel, Enrique. “Eurocentrism and Modernity (Introduction to the Frankfurt Lectures).” *Boundary 2*, vol. 20, no. 3, 1993, pp. 65–76. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/303341.

Ellis, Keith. “Images of Black People in the Poetry of Nicolás Guillén.” *Afro-Hispanic Review*,vol. 7, no. 1/2/3, 1988, pp. 19–22. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/23054119.

Fanon, Frantz.. *The Wretched of the Earth : Frantz Fanon*. New York, Grove Press, 2004.

Fernández Retamar, Roberto. *Caliban and Other Essays*. reprint ed., U of Minnesota Press, 1989.

Freire, Paulo. *Pedagogy of the Oppressed*. New York, Bloomsbury Academic, 2018.

Guillén, Nicolás, and Teresa Labarta De Chaves. “Poems.” *Latin American Literary Review*, vol.2, no. 3, 1973, pp. 113–120. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/20118902.

Guillen, Nicolas. *Motivos de Son*. 2008th ed., Grupo Editorial Tomo.

Hart, Stephen M. *A Companion to Latin American Literature*. Woodbridge, Suffolk Uk ;Rochester, Ny, Tamesis, 2007.

Machover, Jacobo. “en busca de la identidad perdida.” *Revista De Libros*, no. 23, 1998, pp. 47– 47. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/30228830.

Marquez, Roberto. “Racism, Culture and Revolution: Ideology and Politics in the Prose of Nicolas Guillen.” *Latin American Research Review*, vol. 17, no. 1, 1982, pp. 43 68. *JSTOR*,www.jstor.org/stable/2502940.

McCarthy, Bridie. “Identity as Radical Alterity: Critiques of Eurocentrism, Coloniality, and Subjectivity in Contemporary Australian and Latin American Poetry.” *Antipodes*, vol. 24, no. 2, 2010, pp. 189–197. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41958696.

Mignolo, Walter D. “Colonial and Postcolonial Discourse: Cultural Critique or Academic Colonialism?” *Latin American Research Review*, vol. 28, no. 3, 1993, pp. 120–134. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/2503613.

Mignolo, Walter D. “Racism as We Sense it Today.” *PMLA*, vol. 123, no. 5, 2008, pp. 1737–1742. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/25501980.

Mignolo, Walter D. “The Global South and World Dis/Order.” *Journal of Anthropological Research*, vol. 67, no. 2, 2011, pp. 165–188. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41303282.

Mignolo, Walter D. *Local Histories / Coloniality, Subaltern Knowledges, and Border Thinking*. Princeton, Princeton University Press, 2000.

Mignolo, Walter D. *The Darker Side of the Renaissance*. Ann Arbor, Univ. Of Michigan Press,[Ca, 1998.

Mignolo, Walter D., and Michael Ennis. “Coloniality at Large: The Western Hemisphere in the Colonial Horizon of Modernity.” *CR: The New Centennial Review*, vol. 1, no. 2, 2001, pp. 19–54. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41949278.

Mignolo, Walter. *Capitalismo y Geopolítica Del Conocimiento : El Eurocentrismo y La Filosofía de La Liberación En El Debate Intelectual Contemporáneo*. Buenos Aires, Ediciones Del Signo, 2001.

Quijano, Aníbal, and Danilo De. *Cuestiones y Horizontes : De La Dependencia Histórico-Estructural a La Colonialidad/Descolonialidad Del Poder : Antología Esencial*. Buenos Aires, Clacso, Abril De, 2014.

Quijano, Anibal, and Peggy Westwell. “Imperialism and Marginality in Latin America.” *Latin American Perspectives*, vol. 10, no. 2/3, 1983, pp. 76–85. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/2633460.

Quijano, Anibal. “Colonialidad Del Poder y Clasificación Social.” *Journal of World-Systems Research*, vol. 6, no. 2, 26 Aug. 2000, pp. 342–386, 10.5195/jwsr.2000.228. Accessed 11 May 2019.

Quijano, Aníbal. “Colonialidad Del Poder y Clasificación Social.” *Cuestiones y Horizontes: De La Dependencia Histórico-Estructural a La Colonialidad/Descolonialidad Del Poder*, CLACSO, 2020, pp. 325–70.

Quijano, Aníbal. “Coloniality and Modernity/Rationality.” *Cultural Studies*, vol. 21, no. 2–3, Mar. 2007, pp. 168–178, 10.1080/09502380601164353. Accessed 11 May 2019.

Quijano, Aníbal. “Coloniality of Power and Eurocentrism in Latin America.” *International Sociology*, vol. 15, no. 2, June 2000, pp. 215–232, 10.1177/0268580900015002005. Accessed 11May 2019.

Quijano, Aníbal. “Modernity, Identity, and Utopia in Latin America.” *Boundary 2*, vol. 20, no. 3, 1993, pp. 140–155. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/303346.

Retamar, Roberto Fernández, et al. “Caliban: Notes towards a Discussion of Culture in Our America.” *The Massachusetts Review*, vol. 15, no. 1/2, 1974, pp. 7–72. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/25088398.

Review, vol. 7, no. 3, 2007, pp. 79–101. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41949566.

Revolution.” *Venezuelanalysis.Com*, 25 Oct. 2018, venezuelanalysis.com/analysis/12734.Accessed 9 May 2019.

Roberto González Echevarría, and Enrique Pupo-Walker. *The Cambridge History of Latin American Literature. Vol. 2, The Twentieth Century*. Cambridge, Uk, Cambridge University Press, 2006.

Said, Edward W. Orientalism. New York: Pantheon Books, 1978. Print.

Satya, Laxman D. “Eurocentrism in World History: A Critique of Its Propagators.” *Economic and Political Weekly*, vol. 40, no. 20, 2005, pp. 2051–55.

Stephen M. Hart. “Vallejo's ‘Other’: Versions of Otherness in the Work of César Vallejo.” *The Modern Language Review*, vol. 93, no. 3, 1998, pp. 710–723. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/3736492.

Telles, Edward, and Stanley Bailey. “Understanding Latin American Beliefs about Racial Inequality.” *American Journal of Sociology*, vol. 118, no. 6, 2013, pp. 1559–1595. *JSTOR*,www.jstor.org/stable/10.1086/670268.

Torres, Nelson Maldonado. “Enrique Dussel's Liberation Thought in the Decolonial Turn.”*TRANSMODERNITY: Journal of Peripheral Cultural Production of the Luso-Hispanic World*,13 May 2011, escholarship.org/uc/item/5hg8t7cj.

Wallerstein, Immanuel, and Fernando Cubides (Traductor). “Abrir Las Ciencias Sociales.” *Revista Colombiana de Educación* 32 (1996): n. pag. *Revista Colombiana de Educación*.

Wallerstein, Immanuel. “Eurocentrism and its Avatars: The Dilemmas Of Social Science.” *Sociological Bulletin*, vol. 46, no. 1, 1997, pp. 21–39.

अध्याय 2: स्पेनिश में नस्ल आधारित शिक्षण सामग्री का औचित्य.

हाल के समय में शिक्षाशास्त्र में एक प्रचलन देखने को मिला है की बड़े पैमाने पर विभिन्न विषयों में “शिक्षण” नस्ल और सामाजिक अन्याय के मुद्दों पर आधारित हैं। फिर भी गम्भीर चुनौतियाँ संस्थानों और शिक्षाविदों को परेशान कर रही हैं। भारतीय शैक्षणिक परिदृश्य में एक विदेशी भाषा के साहित्य के रूप में लैटिन अमेरिकी साहित्य के शिक्षण को समस्या की वास्तविक पहचान के संदर्भ में हमेशा गंभीर और चुनौतीपूर्ण निहितार्थों का सामना करना पड़ा है। यह विशेष रूप से हमारे अपने अनुभवों में जाति, पंथ और धर्म के आधार पर सामाजिक भेदभाव की स्थितियों को देखते हुए है। इस प्रकार, यह देखने की आवश्यकता है कि कोई व्यक्ति या सामाजिक गुट अपने साहित्य के माध्यम से ऐतिहासिक रूप से कम प्रतिनिधित्व वाली आबादी के अनुभवों का विश्लेषण करने में मदद करने के लिए एक ज्ञानमीमांसीय और मेथडलाजिकल उपकरण को कैसे स्पष्ट और कल्पना कर सकता है। अंतर-संस्कृतिवाद को अक्सर लोककथाओं और रंगीन

“अन्य ”के रूप में संबोधित किया जाता है जो दूर, विदेशी या आत्मसंतुष्ट धर्मनिष्ठता के दायरे में सबसे अच्छा लगता है। इसलिए वर्तमान शोध प्रस्ताव इस मामले को हल करने का प्रयास करता है।

जैसा अभी तक हमने देखा है, आनिबाल किखानो की अवधारणा कॉलोनिअलिटी ऑफ़ पावर का अनुशरण करना, लैटिन अमेरिका में आधुनिकता कान्क्वेस्ट और उपनिवेशीकरण को ढक देती है क्योंकि स्पेन ने इतिहास से रहित भूमि की हेगेलियन कल्पना पर आधारित अपना लेखन, तर्कसंगतता और ईसाई धर्म लागू किया। किखानो का तर्क है कि लैटिन अमेरिका में उपनिवेशीकरण के बिना आधुनिकता के असंभव थी और यह कि आधुनिक मुख्य रूप से एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था बनने से पहले एक ज्ञानमीमांसीय विश्व व्यवस्था थी। इस संदर्भ में, रेस (काले, गोरे , कलर्ड और मेस्टिज़ो) उस नए ज्ञानमीमांसा के पहले निर्माणों में से एक थी। इसलिए नस्ल दुनिया की आबादी के नए समाज की सत्ता की संरचना में रैंक , स्थानों और भूमिकाओं के वितरण की मूलभूत मानदंड बन गई।

एनरिक डुस्सेल बहिष्कृत कलर्ड और काले और हाइब्रिड लोगों के लिए “एथिक्स ऑफ रेस्पॉन्सिबिलिटी” (Dussel, 2013) की बात करते हैं । इसलिए जैसे ही गैर-श्वेत लोगों ने अतीत और वर्तमान की अपनी यादों के माध्यम से आलोचनात्मक विचारों को शुरू किया, वैसे ही विघटन शुरू हो गया क्योंकि वे व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों के रूप में अपने जीवन का जायजा लेना शुरू कर देते हैं। उन्हें एक स्वदेशी परिप्रेक्ष्य से इतिहास की समझ पर निर्माण करना था, जो ऐसी स्पष्टता में विकसित हुआ जैसा पहले

कभी नहीं हुआ था , सांस्कृतिक ताकतों पर पुनः दावा और निर्माण करना, अपने नुकसान का शोक और उपचार करना, विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी में राष्ट्र-निर्माण एजेंडा की शुरुआत के बाद से। औपनिवेशीकरण ने उन्हें मूक बना दिया था क्योंकि उनकी यादें और उनके इतिहास को हिंसक रूप से मिटा दिया गया था । एनरिक डसेल "देस्कोलोनिसासीओन कुल्तुराल" के बारे में बात करते है और उसकी वकालत करते है या, दूसरे शब्दों में, सांस्कृतिक विघटन/स्वतंत्रता की बात करते हैं। इससे उनका मतलब इतिहास, ज्ञानमीमांसा और सोच को समझने के तरीकों में पूरी तरह से सुधार करना है। जैसा कि उनका तर्क है, मानव विचार/चिंतन के ये सभी क्षेत्र/स्थान पूरी तरह से यूरोकेंद्रित थे जो पांच सौ वर्षों पूर्व 1492 में अमेरिका की तथाकथित खोज के साथ शुरू हुए (Dussel,1994)। यूरोकेंद्रित सभ्यता, यूरोपीय व्यवस्था के मापदण्ड के रूप में थी इनमे से कुछ हैं जैसे इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान , साहित्य, संस्कृति ।

डीकोलोनियालिटी, स्वदेशी और गैर-श्वेत लोगों को महत्त्व देता है, क्योंकि यह सचेत रूप से जागरूकता बढ़ाने और गोरों और विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के बीच अशिक्षा की प्रक्रिया के बारे में भी है। वर्तमान थीसिस लैटिन अमेरिकी साहित्य की एक संभावित हैंडबुक की दिशा में एक प्रयास है जो इस मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करने के लिए विहित/प्रसिद्ध ग्रंथों से चयनित उद्धरणों का उपयोग करेगा ताकि वंचित अश्वेत की आवाज को प्रमुखता दी जा सके । इस प्रकार जहां एक ओर यह लैटिन अमेरिका में अपने ऐतिहासिक संदर्भ में नस्ल के महत्वपूर्ण सिद्धांत का पता लगाया जायेगा, वहीं

दूसरी ओर, यह अपने साहित्य में कुछ वास्तविक अभ्यास या उसी के लिए एक नया दृष्टिकोण भी शामिल करेगा।

भारतीय आकादमिक संस्थानों में नस्लवाद अथवा जिसे अंग्रेजी में रेसिज्म कहते है लम्बे समय से पढाया जा रहा है। यह विषय मुख्य रूप से कला संकाय के इतिहास, सामाजिक विज्ञान, एवम् साहित्य में पढाया जाता है। इस विषय को लम्बे समय से अन्य विषयों की तरह ही पढाया जा रहा जबकि यह एक ऐसा विषय है जिसे नए दृष्टिकोण से समझने और पढने की आवशयकता है। भारतीय समाज जिसमे हम रहते है, अनेक प्रकार विभिन्नताओं और असमानताओं का समाज हैं । यह समाज न सिर्फ एक जाति आधारित समाज है बल्कि यह कई स्तरों पर धार्मिक, नस्लीय, लिंगीय, आर्थिक, सामाजिक और एथनिक रूप से भी बटा हुआ है (Mittal,2017)।

इस बटवारे की सबसे बड़ी कमी यह है की यह भारतीय समाज को गैर बराबरी के कई स्तर पर बाँटता है। इस गैर बराबरी के कारण हमारे खुद के समाज में सदियों से तथाकथित श्रेष्ठता के वर्चस्व के नाम पर शोषण और अत्याचार होते रहें हैं जो की वर्तमान समय में भी किसी न किसी रूप में जारी हैं। यही गैर बराबरी पर आधारित शोषण और हिंसा हमारे समाज में इतना प्रचलित और व्यापक है कि इस हिंसा का सामान्यीकरण कर दिया जाता हैं। इस हिंसा के सामान्यीकरण के कारण रेस के कांसेप्ट को सही और सटीक तरीके भारतीय समझने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः एक रेस केन्द्रित दर्शन पर आधारित पुस्तक की आवश्यकता है जो हमारे कोलोनियल अंधेपन(Mignolo,2000 p 4) को दूर कर सके।

कई दार्शनिकों लैटिन अमेरिकी सामाज में हिंसा के सामान्यकरण की ओर ध्यान आकर्षित किये है। यूरोपीय संदर्भ में, मिशेल फौकॉल्ट सबसे महान लोगों में से एक रहे हैं, जिन्होंने इस प्रक्रिया को थीअराइज़ किया है, विशेष रूप से उनकी किताब डिसिप्लिन और पनिशमेंट में (Foucault,1977)। हिस्पैनिक दुनिया में भी ऐसे कई बुद्धिजीवी हुए हैं जिन्होंने लिखा है कि हिंसा कैसे सामान्य हो गई है, जिससे निरंतर भेदभाव और शोषण होता है। इस संबंध में कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं जीन फ्रेंको, आर्टुरो एस्कोबार, एडौर्ड ग्लिसेंट, वाल्टर मिग्नोलो और मारिया लुगोन्स जिन्होंने नस्ल आधारित हिंसा, इसके सामान्यीकरण के बारे में विस्तार से बात की है। उनके लेखन इस तरह के सामान्यीकरण के पीछे की राजनीति को उजागर करते हैं।

वर्तमान थीसिस साहित्य के अत्यधिक विहित ग्रंथों में भी इस तरह के सामान्यीकरण को लक्षित करती है ताकि नस्लवाद को उसकी सभी हिंसा के साथ उजागर किया जा सके। हम अगले अध्याय में देखेंगे कि कैसे औपनिवेशिक लैटिन अमेरिका में हिंसा को सामान्य किया जाता है और यह भी समझेंगे कि इस तरह का सामान्यीकरण उपनिवेशवादियों के हाथों में एक सुविधाजनक उपकरण कैसे बन जाता है।

कोलोंनियल अंधापन क्या है? यह कोलोनियल दिफेरेंस के कारन दिखने लगता है आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता और पश्चिमी सभ्यता पर केंद्रित प्रवचनों द्वारा मानव इतिहास के ग्रहों के आयाम को खामोश कर दिया गया। दूसरे शब्दों में, श्वेत इतिहास जो गैर-श्वेत लोगों के इतिहास को उद्देश्यपूर्ण रूप से अनदेखा करता है और अप्रासंगिक

बनाता है। कोलोनियल अंधापन दूर करना क्यों जरुरी है इसकी क्या आवश्यकता है? ऐसा करना इसलिए जरुरी है की सदियों से शोषकों के बनाये गए ऐसे नियम जो अभी भी किसी न किसी रूप में हमारे बीच विद्यमान है, उजागर करने की जरूरत है। हमें ऐसे टेक्स्ट छात्रों के सामने प्रस्तुत करना है जो ये दिखाता हो की कैसे उत्पीड़ित समाज के लोगों ने नस्लवाद के विरुद्ध निरंतर आवाज उठायी है। ये आवाज और संघर्ष न केवल राजनीति में दिखाई पड़ती है बल्कि वो साहित्य में भी दिखाई देता है, उसके राजनितिक सन्दर्भ में राजनीती और साहित्य के बीच में भी एक सम्पर्क, एक संवेदना और एक समझौता है।

लैटिन अमेरिका दुनिया का एक ऐसा हिस्सा है जहाँ पर नस्लवाद और संस्कृति की अवधारण काफी जटिल है क्यूँकि वे राजनितिक भी हैं पूरी दुनिया में जिस प्रकार से नस्लवाद को देखा और समझा जाता है यहाँ पर वो बिलकुल अलग है। इसका मुख्य कारण है यहाँ का सदियों पुराना श्रेणीबद्धता /हाइरार्ककल पर आधारित नस्लवाद हैं जबकि दुनिया के अन्य हिस्सों मुख्य रूप से यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका में ये चमड़ी के रंग और शरीर की बनावट पर आधारित होता है।

लैटिन अमेरिका में मौजूद नस्लवाद की प्रकृति के माध्यम से वहाँ के लोगों के संघर्ष और उत्पीड़न को विद्यार्थियों को एक नए दृष्टिकोण से बताया और पढ़ाया जा सकता जो की नस्लवाद के अध्ययन और अनुसन्धान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। बीसवीं सदी का लैटिन अमेरिकी साहित्य नस्लीय विविधता,संघर्ष और शोषण के विभिन्न मुद्दों को संबोधित करने का एक आदर्श अवसर प्रदान करता है। जिस तरह से

समकालीन लैटिन अमेरिकी साहित्य में मानव अधिकारों के संदर्भ में नस्लीय पहचान और नस्लीय भेदभाव के मुद्दों को सम्बोधित करता है उससे विद्यार्थी लैटिन अमेरिका में उपस्थित नस्लवाद की सही और सटीक प्रकृति को जान और समझ सकते हैं।

शिक्षा में साहित्य का महत्त्व, प्रभाव, उपयोगिता और प्रसांगिगता

लघु कथाओं, कविताओं और उपन्यासों में किसी देश और समाज का एक अभिन्न हिस्सा होती हैं जो यह बताती हैं कि वे लोग कौन हैं। वे लोग जिनका इतिहास नहीं लिखा गया हैं जिनकी भाषा उनसे छीन ली गयी हैं उन्होंने अपने इतिहास को अपनी कहानियों में जीवित रखा हैं। साहित्य आने वाली पीढ़ी के लिए अतीत का दस्तावेज होती हैं इन कहानियों में अतीत की घटनाओं को शब्दों में पिरो कर और इसे लिखित शब्द के माध्यम से कैसे व्यक्त किया जाता है। कहानियाँ बहुत ताकतवर और शक्तिशाली होती हैं वे बहुत सारे तत्वों को अपने साथ समेटे रखती हैं जैसे लोग, भूमि, युद्ध, चरित्र, रहस्य, इतिहास, और अनेकों अनेक घटनाएँ जो भूत भविष्य और वर्तमान को एक साथ जोडती हैं। साहित्य मात्र एक कहानी न होकर एक ऐसा दस्तावेज भी है जिसमे अतीत के उन सभी घटनाक्रमों का लेखा-जोखा है जहाँ व्यक्तियों के कुछ समूहों ने कैसे पूरी की पूरी सभ्यताओं नष्ट किया दमन किया और अंत में उन्हें चुप करा दिया, खुद को कैसे मसीहा घोषित किया, इतिहास को कैसे लिखा, सभ्यताओं को हाशिए पर रखने के लिए कैसे उपनिवेशवाद,पूंजीवाद और नस्लवाद को स्थापित किया गया।

आधुनिक समय में साहित्य के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है। साहित्य प्रत्येक लेखक के लिए अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करता है। कुछ किताबें समाज का

दर्पण होती हैं और हमें उस दुनिया को बेहतर ढंग से समझने की अनुमति देती हैं जिसमें हम रहते हैं। हम लेखकों के मानस से उनकी कहानियों के माध्यम से आसानी से जुड़ जाते हैं। हालाँकि, साहित्य मानव संघर्ष जैसे आधुनिक समय के मुद्दों को समझने की आवश्यकता को भी दोहराता है। साहित्य आज शिक्षा के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम के रूप में प्रयोग किया जाता हैं जिसकी वजह से आधुनिक समय में साहित्य की प्रासंगिकता काफी बढ़ जाती हैं। दुनिया भर के अधिकांश लोगों के लिए, साहित्य के साथ हमारी पहली गंभीर मुलाकात विद्यालय से होती है। साहित्य पढ़ने-लिखने का अभ्यास बचपन से ही आरम्भ हो जाता है और इसकी शुरुआत कहानियों और कविताओं से होती हैं। एक पृष्ठ पर लिखे गए पात्रों के समूह के साथ सहानुभूति रखने में सक्षम होना स्पष्ट है और एक छात्र के दृष्टिकोण से एक आवश्यक कौशल है। इसके अतिरिक्त, विषयों और संदेशों को समझने की क्षमता हमें सोचने के दूसरे तरीके के लिए खोलती है। पुस्तकें पाठक के लिए मार्गदर्शक हैं और उनके लिए कुछ नया सीखने के लिए एक सेतु का निर्माण करती हैं।

साहित्य मनोरंजन का एक अति प्राचीन माध्यम होने के साथ साथ यह लोगों के जीवन और इतिहास का एक दस्तावेज भी होता है(Pasco, 2004)। साहित्य मानव स्वभाव को दर्शाता है और एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और दूसरों से जुड़ सकते हैं। साहित्य पढ़कर, हम पूरी तरह से एक अलग मानसिकता में खुद को विसर्जित कर सकते हैं और यह पता लगा सकते हैं कि दूसरे कैसे सोचते और महसूस करते हैं। साहित्य के मध्यम से हमारे भीतर दुसरे लोगों के प्रति

सहानुभूति और समझ पैदा होती है। किसी अन्य व्यक्ति के संवाद और अनुभवों में अपने आप को डुबाकर अन्य लोगों की भावनाओं को जाना और समझा जा सकता है। साहित्य विभिन्न क्षेत्रों, जातियों, समाजों और समय की अवधि से जुड़ने में मदद करने का एक महत्वपूर्ण पहलू है। साहित्य लोगों के जीवन के विभिन्न पहलुओं को करीब से देखने में मदद करते हैं जो हमारे उनके बारे में जो दृष्टिकोण बदल सकते हैं.

इतिहास और साहित्य दोनों ही एक दुसरे को आकार देने में एक मौलिक भूमिका निभाते है, हमारे द्वारा पढ़ा गया प्रत्येक उपन्यास, नाटक या कविता राजनीतिक संदर्भ, या एक समय अवधि, या उस समय से एक रिश्ते से प्रभावित होती है जब इसे लिखा गया था । यह एक अद्भुत उपकरण है जो हमें विभिन्न क्षेत्रों और कालखंडो में ले जा सकता है और अन्य लोगों की रचनात्मक विचार प्रक्रियाओं को दिखा सकता है(Kelly, 1974)। उपन्यास ज्ञान, मनोरंजन प्रदान करते हैं, रचनात्मकता को प्रोत्साहित करते हैं और पाठकों के लिए पलायन की पेशकश करते हैं - हमारे जीवन को एक से अधिक तरीकों से समृद्ध करते हैं। वे एक वार्तालाप, एक अनूठी दुनिया और नए दृष्टिकोण बनाते हैं। इतिहास न केवल अतीत का प्रवेश द्वार है, यह हमारे वर्तमान और भविष्य का भी सूचक है। हर समय अवधि के भीतर अलग-अलग लोग और उनके भीतर, हमारी बढ़ती संस्कृति में अलग-अलग चरण होते हैं। पहले प्रत्येक व्यक्ति अपने समय का एक उत्पाद था। एक प्रजाति के रूप में हम हर दिन विकसित होते हैं और उस टाइमस्टैम्प के बिना जो साहित्य हमें देता है, हम अतीत के बारे में कुछ नहीं जान पाएंगे। हम संस्कृति की बेहतर समझ प्राप्त कर सकते हैं और उनकी अधिक सराहना कर सकते हैं। उनके पास

एक अर्थ को जगाने, एक राष्ट्र को सुधारने और पूरी तरह से शाश्वत रहते हुए आंदोलन बनाने की क्षमता है।

साहित्य लोगों की असहमति और झगड़ों के कारणों को उजागर करता है। साहित्य के माध्यम से हम लोगों के ऐतिहासिक पूर्वाग्रह के बारे में जान सकते हैं। इसके माध्यम से ही हम अपने नायकों की ऐसी कहानियों का लेखा-जोखा रख सकते हैं, जिनमें से कुछ को हमने एक बहुत ही महत्वपूर्ण मिशन पर खो दिया था । यह भाषा, संस्कृति और होने के एक तरीके की बात करता है जिसे कोई भी एक व्यक्ति के रूप में उससे दूर नहीं कर सकता है। इसमें कहा गया है कि हालांकि उनकी बात छीन ली गई, लेकिन उन्होंने अपनी आवाज लेखन में ढूंढ ली है और यह आवाज दूसरों को सिखा सकती है। साहित्य सशक्तिकरण के बारे में भी हो सकता है क्योंकि यह हमारी एक छवि को वापस दर्शाता है। विरासत की बात करता है। साहित्य केवल एक समकालीन घटना नहीं है। स्वदेशी लोग हमेशा अपने सपने, भय, दर्शन और औपचारिक प्रथाओं को व्यक्त करते रहे हैं; जो अब यह सिर्फ लिखित शब्द में बदल गया है।

यह अध्याय सामान्य रूप से सांस्कृतिक और नस्लीय अध्ययनों के बीच संबंध और विशेष रूप से मानव अधिकारों को लैटिन अमेरिकी साहित्य में उत्पीड़ित लोगों की आवाज और संघर्ष को कहानी, कविता और उपन्यास के माध्यम से कैसे प्रस्तुत किया गया है उस पर एक विस्तृत चर्चा करता है। लैटिन अमेरिकी लेखक अपने साहित्य में अपने अनुभवों के आधार पर नस्लीय शोषण और उत्पीड़न को प्रकट करने का प्रयास किया है जो की वहां के समाज में विध्यमान मानवाधिकारों की समस्या को उजागर

करता है। यहाँ यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि लैटिन अमेरिका समाज में नस्लवाद और भेदभाव जैसे मुद्दों को पाठ्यक्रम में शामिल करना नस्लवाद के अध्ययन की नयी सम्भावना को जन्म दे सकता है।

बीसवी शताब्दी का लैटिन अमेरिकी साहित्य और नस्लवाद एक मुद्दे के रूप में।

बीसवीं सदी के लैटिन अमेरिकी साहित्य में अफ्रीकी मूल के व्यक्तियों, मूलनिवासियों और मेस्टिज़ो के साथ-साथ विभिन्न समूहों के बहिष्कार, और हाशिए पर धकेल देने की कहानी और भेदभावपूर्ण व्यवहार को दर्शाते हैं, जिन्होंने कई और गंभीर भेदभाव का सामना किया है। लैटिन अमेरिका के मूलनिवासियों और यूरोपीय विजय प्राप्त करने वालों के बीच मुठभेड़ के बाद से एक लंबी और कठिन यात्रा करनी पड़ी है। दो दुनियाओं के बीच की इस मुठभेड़ में, जिसके परिणामस्वरूप एक दूसरे पर प्रभुत्व स्थापित हुआ, ने भी लैटिन अमेरिकी समाजों की विषम संरचना को पहचानने की आवश्यकता को जन्म दिया। इस तथ्य को स्वीकार करने से ही हमारे देशों में विविधता में एकता प्राप्त करना संभव होगा। तभी पहचान के साथ विकास हासिल करना संभव होगा।

हालांकि, सभी साहित्यिक ग्रंथ अलग-अलग लेखकों के हैं परन्तु उनके केंद्र में नस्लवाद एक केंद्रीय मुद्दे के रूप में विध्यमान है और इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक साहित्य में लेखक एक संकल्प और एक बिस्वास के साथ कुछ ऐसा लिख रहा है जो आने वाली पीढ़ियों के जीवन को सरल और सुगम बना सकता है। साहित्य और मानविकी निस्संदेह नस्लीय भेदभाव और सामाजिक अन्याय के खिलाफ एक हथियार

के रूप में हैं; यह स्वतंत्रता, समानता, मानव अधिकारों और सभी लोगों की वैध आकांक्षाओं की रक्षा का हथियार भी हैं। इस कारण से, बीसवीं सदी का साहित्य जो की कहानी, कविता और उपन्यास के रूप में है एक ऐसी आलोचना प्रस्तुत करता है जिसके माध्यम से कट्टरपंथी राजनीती और शोषण पर आधारित समाज के परिवर्तन की दिशा में एक अनोख़ा कदम हो सकता है। इक्कीसवीं सदी की इस शुरुआत में विद्यार्थियों को एक ऐसा पाठ्यकर्म उपलब्ध कराएं जो समाज के विभिन्न समूहों और उनकी सांस्कृतिक पहचान के बीच संबंधों के लिए नए मॉडल की तलाश करें। विश्वविद्यालय में ऐसी खोज लैटिन अमेरिकी साहित्य और मूलनिवासियों के अधिकारों के अध्ययन पर आधारित हो सकती है। दुनिया का भविष्य उन लोगों का होगा जो नस्लीय, सांस्कृतिक और भाषाई रेखाओं को मिटाने के बारे में सोचते हैं और कार्य कर सकते हैं। ऐसा व्यक्ति बनने की दिशा में पहला कदम यह समझना है कि नस्लीय पहचान, राष्ट्रों, संस्कृतियों और उनके इतिहास के बीच के मूलभूत अंतर को जानने और समझने के योग्य बनना होगा।

एथनिक पहचान और नस्लीय भेदभाव का सामना करने वाले लैटिन अमेरिकी साहित्य का अध्ययन सभी लैटिन अमेरिकी और कैरेबियाई प्रकृति को स्थानीय सांस्कृतिक गवाह और सार्वभौमिक के वाहक के रूप में स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है, जो नस्लीय पहचान के अध्ययन और रक्षा के लिए एक सतत प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके जिसके द्वारा अकादमी पाठों और सिद्धांतों व्यापक दृष्टि से जाना और समझा जा सके। विशिष्ट साहित्य लैटिन

अमेरिकी और कैरेबियाई समाज की संरचना और बौद्धिक प्रासंगिकता को बहाल करने का एक तरीका हो सकता है।

भारतीय समाज की असामनता के सन्दर्भ में लैटिन अमेरिकी नस्लवाद

एक बहुसांस्कृतिक समाज में किसी एक विशिष्ट विषय के शिक्षण पर बहुत सी जटिलताओं का सामना करना पड़ता हैं। भारत जैसा देश जिसमे तमाम प्रकार की सांस्कृतिक विभिन्नता है, नस्लवाद जैसे गंभीर विषय के अध्यापन को लेकर तमाम चुनौतियाँ सामने आती हैं। ऐसे में भारतीय परिवेश में जहाँ छात्र और अध्यापक दोनों ही विशेषाधिकार और उत्पीड़न के व्यक्तिगत अनुभवों से भरे हुए हैं एक ऐसी पाठ्यक्रम सामग्री अनिवार्य रूप से तैयार करने की आवशयकता हैं जिसके माध्यम से छात्र और अध्यापक दोनों के आपसी पूर्वाग्रहों को एक तरफ रखकर तार्किक दृष्टिकोण से नस्लवाद जैसे गंभीर मुद्दे को संबोधित किया जा सके।

प्रश्न यह कि क्या भारतीय समाज जहाँ इतनी विभिन्नता है, अध्यापक और छात्र दोनों ही अपनी सुविधा अनुसार विषय को जानते समझते और उसे संबोधित करते हैं । उदहारण के तौर पर, यदि कोई अध्यापक ब्रहामणवादी है, तो वह अपनी श्रेष्ठता को ध्यान में रखते हुए ही नस्ल को संबोधित करेगा । ऐसे में विषय का मूल उद्देश्य अर्थात, (नस्लवाद या जातिवाद) न केवल विलुप्त हो जाता है बल्कि वो अपने कोलोनियल एजेंडा को बनाये रखता है । इस प्रकार से वह नस्लवाद और जातिवाद की वास्तविकता से जान बुझकर या या स्वयं की कोलोनियल अंधापन की चुप्पी और इंकार के दायरे में ही सिमट

कर रह जाता हैं । भारत में असामनता पर आधारित वो संस्थायें जो नस्लवाद की असंवेदनशील व्याख्या के लिए उत्तरदायी हैं उन पर गंभीर चर्चा की आवश्यकता हैं ।

नस्लवाद एक ऐसी धारणा अथवा विश्वास है कि एक रेस/नस्ल दूसरे रेस से श्रेष्ठ है जो अक्सर लोगों के प्रति एथनिसिटी और नस्ल पर आधारित भेदभाव और पूर्वाग्रह की ओर ले जाती लेकिन सीधे शब्दों में कहें तो इन दो श्रेणियों के तहत यह पर्याप्त नहीं है यह अनुचित है। भारत में देखें तो यह बहुत से रूपों और आयामों का एक मिश्रण हैं, जैसे कि जाति, वर्ग, लिंग, धर्म और नस्ल। कभी-कभी नस्लवाद प्रकट नहीं किया जा सकता है परन्तु इसके चेहरे और सिद्धांत हैं । सवाल यह है कि क्या हम इन भेदभाओं और नस्लवादी भेदभाओं में कुछ तुलना नहीं कर सकते हैं? निसंदेह यह एक विवादित प्रश्न है। लेकिन हमारे मुद्दे के लिए, इन विवादों की तरफ ध्यान देना जरुरी है।

यह बहुत ही चिंताजनक विषय है की भारत एक देश जो सदियों तक स्वयं कोलोनिअलिस्म के दौरान नस्लवाद से पीड़ित रहा वहां के खुद के समाज में नस्लवाद की समस्या देखने को मिलती हैं । भारत सरकार और यहाँ के बहुसंख्यक लोग इस बात से इंकार करते हैं की यहाँ के लोग नस्लवादी हैं यदपि भारतीय संविधान पूरी तरह से लोकतांत्रिक है और समस्त भारतीय इसके समक्ष एक सामान है। परन्तु यदि यहाँ के समाचार पत्रों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में उत्तर पूर्वी राज्यों के निवासियों और अफ़्रीकी मूल के लोगों के नस्लवादी टिपण्णी और व्यवहार से भरे पड़े हैं। केवल यही नहीं सोशल मीडिया पर भी ऐसे बहुत से वीडियोस और कंटेंट आसानी से उपलब्ध हो जायेंगे जो इस बात की पुष्टि करते हैं की भारतीय समाज में भी नस्लवादी समस्या मौजूद है। उत्तर पूर्वी

राज्यों और अफ़्रीकी मूल के निवासियों की ये हमेशा शिकायत रहती है की भारत के कई हिस्सों में उनके खिलाफ नस्लवादी टिपण्णी की जाती है । उत्तर पूर्वी राज्यों के लोगों को चाउमीन, मोमोम्स, चिंकी, नेपाली इत्यादि जैसे शब्दों से बुलाया जाता हैं वहीँ अफ़्रीकी मूल के लोगों को कालू, कालिया कहा जाता है (BBC, 2011)। उत्तर पूर्वी राज्यों की महिलाओं की ये हमेशा शिकायत रहती है की उन्हें वेश्या और धंदे वाली कहा जाता है इन लोगों को आसानी से किराये पर घर भी नहीं मिलते हैं। अफ़्रीकी मूल के लोगों की छवि ड्रग डीलर , माफिया और इस्मुग्गालर के तौर पर बना दी गयी हैं । भारत में नस्लवादी टिपण्णी और व्यवहार के चलते कई बार अफ़्रीकी मूल के लोगों और उत्तर पूर्वी राज्यों के लोगों की जान भी जा चुकी हैं । इन लोफों के साथ काम के स्थलों पर अच्छा व्यहार नहीं किया जाता फिल्मो और सिनेमा में इनकी छवि एक नौकर और चोकीदार तक ही सिमित है (Singh, 2016)।

भारत में जाति की समस्या और नस्लवादी, दोनों बहुसंख्यक समाज के ताकत का प्रदर्शन करती हैं क्यूंकि कि वे इन व्यवस्थाओं से डिवीज़न ऑफ़ लेबर स्थापित करती है। मनुस्मृति व्यापक रूप से हिंदू धर्म पर सबसे महत्वपूर्ण और आधिकारिक पुस्तक मानी जाती है । मनुस्मृति लगभग ईसा के जन्म से कम से कम 1000 वर्ष पहले की है, जो कि "समाज की व्यवस्था और नियमितता के आधार के रूप में जाति व्यवस्था को स्वीकारती और उचित ठहराती है"(खुदशाह, 2008) । जाति व्यवस्था हिंदुओं को चार मुख्य श्रेणियों में विभाजित करती है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मनुस्मृति के अनुसार यह सभी वर्ण हिंदू देवता ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। इन चार वर्णों के बाहर भी एक समूह आता है

जिसे अछूत अथवा दलित कहा जाता हैं इस वर्ग ने सबसे ज्यादा भेदभाव, अलगाव, हिंसा और असमानता का सामना किया है । दलितों अक्सर जबरन सबसे गंदा, नीच और खतरनाक काम सौंपा जाता है, और बहुतों को जबरन और बंधुआ मजदूरी के अधीन किया जाता है। इस प्रचलित बहिष्कार के कारण, अधिकांश दलितों गंभीर गरीबी का सामना करते हैं , उनके पास संसाधनों, सेवाओं और विकास तक सीमित पहुंच है। जातिगत भेदभाव भारत में लाखों लोगों को प्रभावित करता है, भारत में रहने वाले दलितों का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का बड़े पैमाने पर उल्लंघन भी शामिल है । जाति व्यवस्था लोगों को असमान और श्रेणीबद्ध सामाजिक समूहों में विभाजित करती है। नीचे के लोगों को अन्य जाति समूहों के लिए 'कमतर इंसान', 'अशुद्ध' और 'प्रदूषणकारी' माना जाता है।

भारत में जातिव्यवस्था की वजह से निचले तबके का इतना शोषण और अत्याचार हुआ की की वो लोग सामाजिक आर्थिक और राजनितिक दृष्टि से इतना पीछे रह गए निचली जातियों की एक बड़ी जनसंक्या अभी भी अपने आप को समाज की मुख्धारा से जोड़ नहीं पाई है । जातिव्यवस्था से भारतीय समाज इतना प्रभावित रहा की वो अभी भी एक आदर्श समाज बनने की राह में काफी पीछे है । भारत में आज भी सभी बड़े आर्थिक और सामाजिक संस्थानों, आकादमिक जगत एवम राजनितिक दुनिया में बड़ी जातियों का दबदबा है । भारतीय संविधान में जाति उन्मूलन को लेकर तमाम कानून बनाये गए हैं , इन सबके बावजूद जाति आधारित शोषण और उत्पीडन अभी भी जारी हैं । इस थीसिस में यह तर्क रखा जा रहा है की एक नस्ल आधारित शिक्षण सामग्री

का न्यायोचित प्राथमिकता इसलिए जरुरी है क्यूंकि यह हमें जाति और नस्ल की ओर ज्यादा संवेदनशील बना सकते हैं और हमें देकोलोनिअलित्य की तरफ ले जा सकते हैं .

जाति को लेकर विमर्श , चिंतन और चेतना के आन्दोलन

जाति उन्मूलन को लेकर भारत के बहुत से दलित चिंतकों ने काम किया है उन में मुख्यरूप से भीमराव अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले, पेरियार इत्यादि हैं । भारत में बराबरी को लेकर वामपंथी विचारधारा के लोगों ने काफी काम किया है परन्तु वो मुख्यरूप से वर्ग संघर्ष की बात करते हैं जिसकी वजह से उन पर ये आरोप लगते हैं की वो जातिव्यस्था की सही और सटीक समझ नहीं रखते है । अक्सर उनपर जातिवाद को लेकर सीमित समझ पर सवाल भी उठाए जाते हैं । सत्ताधारी राजनीती वंचित जाति के लोगों पर होने वाले शोषण, अत्याचार, और गरीबी पर बात तो करते हैं लेकिन उनकी (शोषितों) प्रतिनिधित्व अक्सर एक बहुसंख्यक पार्टी के मुद्दे के तले दब जाते हैं ।

वामपंथी दल आरम्भ में जाति को लेकर उतने मुखर नहीं हुए और आरक्षण को लेकर भी उन्होंने बहुत जोर नहीं दिया। सत्तर के दशक में महाराष्ट्र में कुछ युवकों ने मिलकर दलित पेंथर नाम के आन्दोलन की शुरुआत की जिसका मुख्य उद्देश्य दलितों-उत्पीड़ितों के अधिकार और अस्मिता के संघर्ष को इस आंदोलन के मध्यम से आगे बढ़ाना था (Contursi, 1993, page 325)। यह दलितों की केवल आर्थिक उन्नति के लिए शुरू किया गया आंदोलन नहीं था, बल्कि उनके संवैधानिक अधिकारों को वास्तविकता में लागू कराने और उनकी स्वाधीनता, समानता और बंधुत्व को सुनिश्चित कराने का आंदोलन था। यह कहना कतई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि दलित पैंथर

आंदोलन ने तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में तूफान की तरह अपनी उपस्थिति दर्ज कराई, जिससे जातिगत श्रेष्ठता की थोथी दलील के जरिये दलितों के प्रति अन्याय और उत्पीड़न करने वाली शक्तियों को जबरदस्त चुनौती मिली। इसने सरकार को भी दलितों-वंचितों की समस्याओं के प्रति ध्यान देने को विवश किया।

दलित चेतना के केंद्र में दलित और गैर दलित साहित्य पर विवाद

बीसवी शताब्दी में भारत में बहुत से दलित लेखकों ने अपनी रचनाओं से दलित वर्ग की पीड़ा और संघर्ष को अपने अपने दृष्टीकोण कहा है। इन दलित लेखकों की यह विशेषता हैं इन्होने अपने साहित्य में स्वयं अनुभव किया हुआ जाति उत्पीडन को लिखा हैं । यह अनुभव असमान और गैर बराबरी की सदियों पुरानी व्यस्था के बीच दबा कुचला इन्सान का जाति के विरुद्ध आज़ादी के लिए किये संघर्ष से प्राप्त हुआ हैं। गैर दलित लेखक जब दलितों पर लिखते तब वो एक सहानुभूति के रूप में लिखते हैं और कहानी का अंत एक समझौते के रूप में हो जाता है ।

दलित लेखकों का यह मत है की केवल दलितों द्वारा लिखा साहित्य ही सही मायने में दलित साहित्य है उनका गैर दलित लेखकों पर ये आरोप है की वो लोग दलित उत्पीड़न को समझ ही नहीं पाते हैं और बहुत सारे शहरी उदारवादियों को यह केवल पहचान का मुद्दा नजर आता है। जाने माने दलित पत्रकार उर्मिलेश वामपंथी और गैर दलित लेखकों पर यह आरोप लगते हैं कि "यह लोग डिक्लास तो हो जाते हैं परन्तु डीकास्ट नहीं होते हैं" (जायसवाल, 2021) अर्थात गैर दलित लेखक कहीं न कहीं जाति के पूर्वग्रह से ग्रस्त होतें हैं । दलित लेखक अपने साहित्य में उन सभी धार्मिक मान्यताओं

को नकारते हैं, जो उन्हें तुच्छ और निम्न रखने के लिए सही ठहरातें है । इसके अतिरिक्त अपने लिए वो लोग उन्ही धार्मिक ग्रंथों से अपने नायक को भी खड़ा करते हैं । ऐसे नायक के रूप में महिषासुर, शम्भूक तथा एकलव्य को नए सिरे से खड़ा किया जा रहा है (पाण्डेय, 2017)। आज देश के सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों में अधिकांश संख्या में दलित साहित्य पर शोध हो रहा है। यह इस बात का प्रमाण है कि दलित साहित्य अपनी स्वीकृति से आगे बढ़ चुका है ।

अन्य सामाजिक परिस्थिति और संस्कृति सीखने और समझने में बाधक विविधताएं

भारत के वो संस्थायें जो असामनता, शोषण और घृणा के लिए उत्तरदायी हैं वो यहाँ की सामाजिक संरचना का एक अभिन्न अंग बन गयी हैं । यही संस्थायें यहाँ के लोगों का सामाजिक स्तर भी निर्धारित करती हैं । यह संस्थाए भारतीय समाज को दो हिस्सों में बाँटती हैं एक शोषक है तथा दूसरा शोषित हैं यद्यपि कई बार यह स्थान बदलता रहता हैं । उद्धारण के तौर पर एक व्यक्ति जो जातिवादी मानसिकता का है वह अपने देश में दलितों का शोषक हो सकता है परन्तु यदि वही व्यक्ति यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया या कनाडा की यात्रा पर जाता है तो इस बात की सभावना है की वो नस्लवादी हिंसा या टिप्पन्नियों का शिकार हो जाये । ठीक इसी प्रकार से कोई दलित व्यक्ति भी किसी पूर्वोत्तर राज्य के व्यक्ति के खिलाफ कोई नस्लवादी टिपण्णी

कर सकता हैं । भारत का नागरिक जो शोषक की भूमिका है उसके व्यवहार में वो गुण होंगे जो उसे ताकत प्रदान करते हैं जैसे दुसरे लोगों की तुलना में श्रेष्ट और बेहतर होना।

असमानता की संस्थायें समाज के एक वर्ग के लोगों को विशेषाधिकार देती हैं तो वहीं एक वर्ग को हासिये पर खड़ा कर देती हैं जो उनके शोषण का आधार बनती हैं। ये दोनों ही वर्ग के लोगों के नामो, उनके व्यवसायों, कपड़े और सामाजिक जीवन में दिखाई पड़ती है, यद्यपि कुछ अपवाद भी हो सकतें हैं । इन संस्थाओं के प्रभाव को शिक्षण और शिक्षकों के व्यवहार में भी देखा जा सकता है, और चूँकि यह संस्थाए सदियों पुरानी हैं इसलिए अक्सर इन्हें शिक्षा प्रणाली द्वारा सामान्य कर दिया जाता हैं ।

इस सामान्यकरण के कारण बहुत से शिक्षक इस भेदभाव पूर्ण व्यवहार को पहचान भी नहीं पाते हैं। अध्यापक के वर्चस्व, प्रतिष्ठा ऐसा प्रभाव पड़ता है की प्रश्न पूछने से डरता हैं और कई बार आध्यापक अपने पूर्वाग्रह को छुपाने के लिए स्वयं छात्रों को हतोत्साहित करता हैं, जिसके कारण यह छात्रों के सीखने के अनुभवों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। इस प्रकार यह स्तिथि चिंताजनक बन जाती है क्यूंकि हाशिए की पृष्ठभूमि के छात्र अक्सर उन्ही कथनों पर विश्वास कर लेते हैं जो उन्हें अध्यापकों द्वारा परोसा जाता हैं अतः यह अति आवश्यक है कि उसकी अच्छे से जाँच पड़ताल हो।

सांस्कृतिक मूल्य :और सांस्कृतिक विभिन्नताए किसी भी समाज के सोचने और समझने के तरीकों को प्रभावित करती हैं । जाति, नस्ल, एथनिक समूह, और धर्म के

प्रति पूर्वाग्रह किसी दूसरी संस्कृति को समझने और जानने में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। कक्षा में विविध पृष्ठभूमि के अन्य बच्चों के साथ एक शिक्षक के रूप में सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ को समझना होगा और इसके प्रति संवेदनशील होना होगा।

प्रत्येक संस्कृति के मूल्य एक संस्कृति के छात्र के सीखने के तरीके को प्रभावित करते हैं। कोई दुनिया के बारे में सीखता है । और अपनी संस्कृति के नियमों और मूल्यों के अनुसार कैसे व्यवहार करता है । शिक्षार्थी इन नियमों को उसी प्रकार कक्षा में लागू करता है। एक शिक्षक के लिए इन मूल्यों और वे किस प्रकार के शिक्षार्थियों का निर्माण करते हैं, के बारे में जागरूक होना महत्वपूर्ण है । सांस्कृतिक मूल्यों में अंतर को ध्यान में रखते हुए, एक शिक्षक को सावधान रहना चाहिए कि किसी छात्र को उसकी जातियता के सांस्कृतिक मानदंड के आधार पर अति-सामान्यीकरण या स्टीरियोटाइप न करें। बल्कि शिक्षक को छात्र को उसकी पृष्ठभूमि को समझने के लिए एक व्यक्ति के रूप में जानना चाहिए जो सीखने को प्रभावित कर सकता है।

भारतीय आकादमिक में रेस/नस्ल को पढाये जाने को लेकर कुछ चुनौतियाँ

भारतीय अकादमिक क्षेत्र में नस्ल से सम्बंधित पाठ्यकर्म को तेयार करना और पढ़ाना एक चुनौती पूर्ण कार्य होने के साथ साथ एक बहुत अधिक आवशयकता वाला भी विषय है । ऐसा इसलिए क्यूंकि भारत सामाजिक विभिन्नताओं से भरा पड़ा है, यहाँ पर बहुत से धर्म हैं जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बोध, जैन, पारसी, यहूदी इत्यादि । हिंदी धर्म में चार वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिये वेश्य और शुद्र हैं इन चरों वर्णों में बहुत सी जातियाँ

और उपजातियां हैं इसी के साथ साथ बहुत सी अनुसूचित जनजातियाँ भी हैं । लगभग सभी धर्मो में भी अपनी अपनी मान्यताओं के आधार पर दो या अधिक हिस्सों में बटें हुयें है उदाहर्ण के तौर पर इस्लाम शिया और सुन्नी, ईसाई कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट, जैन स्वेताम्बर और पीताम्बर, बौध धर्म में भी हीनयान/थेरवाद, महायान और वज्रयान बौद्ध धर्म में प्रमुख सम्प्रदाय हैं । इन सभी धर्मो में अक्सर अपनी अपनी परम्परों और मान्यताओं को लेकर आपसी टकराव बना रहता रहता है, यह टकराव धर्म , जाति भाषा और सांस्कृतिक स्तर तक होता हैं । इतनी सारी विभिन्नताओं और टकराओं के मध्य कोई व्यक्ति किसी एक विषय को सही और सटीक समझ पाए इसकी सम्भावना बहुत कम रह जाती है ।

जैसा की उच्च शिक्षा के प्रोफेसर माइकलिनोस ज़ेम्बिलास के शब्दों में, " बहुत सी बातें बहुत बुरी तरह से गलत हो सकती हैं“ "So many things can go horribly wrong” (Zembylas, 2012, page 120) ।इसलिए सही और सटीक पाठ्यक्रम सामग्री अपने और समाज के बारे में छात्र की गहरी धारणाओं और बिस्वासों को चुनौती दे सकती है । इस पाठ्यकर्म के मध्यम से यह सवाल भी उठाया जा सकता है की नस्ल से सम्बंधित मुद्दों और विषयों पर बोलने, पढ़ाने और सीखने का अधिकार किसके पास है ।

भारत में सामाजिक संरचना इतनी जटिल है की अनुभवी शिक्षकों को भी नस्लवाद पढ़ते समय भ्रम और दुविधा हो सकती हैं । कई बार कक्षा में विद्यार्थी प्रत्यक्ष या अप्रतक्ष्य रूप से नस्लवादी , दुसरे समुदाय के खिलाफ अनुचित शब्द , जातिवादी

शब्दों का प्रयोग या आक्रामक टिप्पणियों या व्यवहार करते हैं जो की उन्होंने समाज में अनचाहे रूप में सिख लिया है । ऐसे में कई बार अध्यापक स्वयं ऐसे व्यवहार को चुनौती नहीं दे पाते और कोई प्रतिक्रिया देने से बचते हैं । नस्लीय न्याय को प्रभावी ढंग से सिखाने के लिए और उसकी चुनौतियों को देखते हुए, Lichty & Palamaro-Munsell ने निष्कर्ष निकाला, "हमें ठोस रणनीतियों की आवश्यकता है"। नैतिक रूप से उन मानसिक तनाव के साथ बैठना जो हमारी पहचान, हमारे इतिहास, शक्ति और विशेषाधिकार के खिलाफ दबाव डालते हैं । हमें ऐसी रणनीतियों की आवश्यकता है जिससे कक्षा में संवाद और सजगता को बढ़ावा मिले तथा सभी छात्रों को असुविधा कम से कम हो (2017, P-9) ।

प्रस्तावित शिक्षाशास्त्र/ मॉड्यूल का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रचनाओं के माद्यम से उन तरीकों का विश्लेक्षण करना है जिसके केंद्र में रेस/नस्ल को रखकर ज्ञान के वर्चस्व को पूरी दुनिया में स्थापित किया गया, इस मॉड्यूल के केंद्र में अस्तित्व, अस्मिता, सम्मान और संस्कृतिक दृष्टिकोण को ताकतवर बनाते हुए मुक्ति एवं स्वतंत्रता पर जोर देना है । इसी प्रकार, हिंसा और वर्चस्व का विखंडन करते हुए चिंतनशील आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य के विचार की भी समीक्षा करना है । ज्ञान के पारंपरिक तरीकों को तोड़ना, और लोकप्रिय यूरोकेंद्रित आख्यान को चुनौती देना, कोलोनियलटी ऑफ़ पॉवर को पोषित करने वाले लोगों के उद्देश्यों और प्रथाओं को नष्ट करने का प्रयास करना हैं ।

आज भी हमारे जीवन, हमारे कार्यस्थलों और हमारे समुदायों में रेस/नस्ल पर आधारित अन्याय कायम हैं,समाज के विभिन्न तबकों से आने वाले विद्यार्थी इस अन्याय और गैर बराबरी की जटिलताओं को नहीं समझ पातें हैं । हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हम नस्ल और समानता की जटिलताओं को समझें और सक्रिय रूप से नस्लवाद को नए दृष्टिकोण से देखने और समझने की क्षमता विकसित करने का प्रयास करें। उच्च शिक्षा के संस्थान में, ज्ञान, वर्चस्व, संस्कृति के उद्भव और विकास की उन जड़ों तक पहुंचे जो ग्लोबल साउथ में फ़ैल चुकी है।अतीत के अन्याय से छात्रों का साहित्य के माध्यम से परिचय कराना ताकि विद्यार्थी आसपास के लोगों, संस्थानों और समुदायों पर नस्लवाद के प्रभाव को पहचान पायें । कक्षा की चर्चाओं में रेस/नस्लवाद और समानता से संबंधित अतीत की घटनाओं के माध्यम से छात्रों को विचारशील बनाना हैं ताकि वे पूर्वाग्रह और नस्लवाद की पहचान कर सकें और उन्हें संबोधित कर सकें।

वर्तमान संदर्भ में 'स्वयं को गुलामी अथवा उपनिवेश से मुक्त' करने का क्या अर्थ है और मौजूदा सिद्धांत हमें इस आंदोलन को बेहतर ढंग से समझने में कैसे मदद कर सकते हैं। मुक्ति और स्वतन्त्रता के सवालों को केंद्र में रखकर बीसवी शताब्दी के लैटिन अमेरिकी साहित्य को आनिबाल किखानो, वाल्टर डी मिग्नोलो और एनरिके दुस्सेल की फिलोसफी ऑफ़ देकोलोनियटी के माद्यम से नस्लवाद, साम्प्रय्दयिकता, अलगाववाद, तथा आर्थिक पूँजीवाद के बारे विद्यार्थियों को परिचित कराना साथ ही साथ स्वतन्त्रता, समानता , सामाजिक न्याय, वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिए प्रेरित करना । विद्यार्थियों को यह समझने की जरुरत है की उपनिवेशवादियों की जगह लेने

वाले देशी अभिजात वर्ग अभी भी विशेषाधिकार और शोषण की संस्थाओं की ठीक उसी संरचना से चिपके हुए हैं और बनाए हुए । यदि हमें अपने आप को हर प्रकार की गुलामी से मुक्त करना चाहते है, तो हम अपने विचारों को मन में दबाकर ऐसा नहीं कर सकते हैं; हमें उन्हें ज़ोर से कहने और उनके आधार पर बातचीत शुरू करने की ज़रूरत है।

विद्यार्थियों को साहित्य के मध्यम से पश्चिमी देशों द्वारा लागू किये गए तर्क और ज्ञान के बीच घनिष्ठ संबंध को समझाने का प्रयास करना है। विद्यार्थी खुद को कैसे पश्चिम द्वारा थोपे गए ज्ञान की संरचना से 'अलग' कर सकता है, और फिर अपने सोचने, बोलने और जीने के तरीकों को 'पुनर्गठित' कर सकता है जिसका प्रयोग वह 'प्रैक्सिस' के रूप में कर सकता है । यूरोकेंद्रित पाठ्यक्रम को समाप्त कर नए पाठ्यकर्म के मध्यम से हमें यह भी ध्यान देना है कि हम न केवल उपनिवेशी संरचना को समाप्त करने पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं, बल्कि हम पूर्व औपनिवेशिक साम्राज्य में उच्च शिक्षा संस्थानों में स्थित छात्रों, शोधकर्ताओं और शिक्षकों के रूप में 'खुद' को भी अलग कर रहे हैं।

इस पाठ्यक्रम के माध्यम से हमारा उद्देश्य विद्यार्थियों की दृष्टिकोण को विकसित एवं विस्तृत करना है, संवेदनशीलता, सहानुभूति और मानवता के संदर्भ में। उस दृष्टिकोण का निर्माण करने के लिए हमें अतीत को देखना होगा और यह स्वीकार करना होगा कि खुद का इतिहास एवं साहित्य के माध्यम से कैसे अपने पैरों में पड़ी बेड़ियों को पहचाना और तोडा जा सकता है । यदि हम अपने इतिहास से परिचित हैं, तो हम अपनी आवाज उठा पाएंगे उस अन्याय और शोषण के विरुद्ध जो सदियों से किसी एक विशेष वर्ग पर नस्लवाद के नाम पर होता रहा है। साहित्य के माध्यम से हम समस्या की जड़

तक पहुँच सकते हैं और ऐसी रणनीति बना सकते है जो आने वाली पीढ़ी को उस संघर्ष और उत्पीड़न से बचा सकती है जिसे हमारे पूर्वजों ने झेला है। यह विश्वास आने वाली पीढ़ियों के अंतःकरण में बजता रहना चाहिए जो अन्याय हमारे पूर्वजों ने सहा है उसे फिर कभी दोहराया नहीं जायेगा। यह उन पीड़ितों की इच्छा है जो अपनी पहचान और अपनी गरिमा की पहचान की मांग करते हैं। हमारे पूर्वजों ने अतीत में अपनी भूमिका निभाई है अब हमारी बारी है की इस परम्परा को आगे लेकर जाएँ। हम सभी को भविष्य में अपना स्थान लेना चाहिए। हालाँकि, अतीत द्वारा छोड़ी गई चोटें हमें वर्तमान अन्याय का सामना करने से नहीं रोक सकतीं। हमें आने वाली पीढ़ियों के भविष्य को गिरवी नहीं रखना चाहिए।

REFERENCES:

Beltz, Johannes. Mahar, Buddhist and Dalit: Religious Conversion and Social Political Emancipation. Manohar Publishers and Distributors, 2005.

Bora, Papori. “The Problem Without a Name: Comments on Cultural Difference (Racism) in India.” South Asia: Journal of South Asia Studies 42.5 (2019): 845–860. South Asia: Journal of South Asia Studies. Web.

Chandran, Manju. “The Shameful History of Racism in Bollywood.” *EasternEye*, 25 June 2020, https://www.easterneye.biz/the-shameful-history-of-racism-in-bollywood/.

Chatterjee, Arnab. “Survival, Struggle and Identity in Dalit and Afro-American Literature.” *Deleuzian and Guattarian Approaches to Contemporary Communication Cultures in India*. Springer Singapore, 2020. 191–

205. *Deleuzian and Guattarian Approaches to Contemporary Communication Cultures in India*. Web.

Chetty, Naganna, and Sreejith Alathur. “Racism and Social Media: A Study in Indian Context.” *International Journal of Web Based Communities* 15.1 (2019): 44–61. *International Journal of Web Based Communities*. Web.

Contursi, Janet A. “Political Theology: Text and Practice in a Dalit Panther Community.” *The Journal of Asian Studies*, vol. 52, no. 2, 1993, pp. 320–39.

Dattatreyan, Ethiraj Gabriel. “Desiring Bollywood: Re-Staging Racism, Exploring Difference.” *American Anthropologist* 122.4 (2020): 961–972. *American Anthropologist*. Web.

Dover, Alison G. “Teaching for Social Justice and the Common Core: Justice-Oriented Curriculum for Language Arts and Literacy.” *Journal of Adolescent and Adult Literacy* 1 Mar. 2016: 517–527. *Journal of Adolescent and Adult Literacy*. Web.

DuBois, Marc. “The Governance of the Third World: A Foucauldian Perspective on Power Relations in Development.” *Alternatives: Global, Local, Political*, vol. 16, no. 1, 1991, pp. 1–30. *JSTOR*, http://www.jstor.org/stable/40644700.

Dussel, Enrique. “1492 El Encubrimiento Del Otro.” *Endocrinology and metabolism clinics of North America* 1994: 451–466. Print.

Dussel, Enrique. *Ethics of Liberation: In the Age of Globalization and Exclusion*. Edited by Alejandro A. Vallega, Translated by Eduardo Mendieta et al., Duke University Press, 2013.

Escobar, Arturo. “Development, Violence and the New Imperial Order.” *Development* 47.1 (2004): 15–21. *Development*. Web.

Escobar, Arturo. “Imagining a Post-Development Era? Critical Thought, Development and Social Movements.” *Social Text*, no. 31/32, 1992, pp. 20–56. *JSTOR*, https://doi.org/10.2307/466217.

F, Charles Hegel, J Sibree, Carl J**.** Friedrich, and J Sibree. The Philosophy of History. New York: Dover Publications, 1956.

Fernandes, Walter. "The emerging dalit identity: The reservation of the subalterns." *New Delhi: ISI Publication* (1996).

Foucault, Michel, 1926-1984. *Discipline and Punish : the Birth of the Prison*. New York :Pantheon Books, 1977.

Franco, Jean. “From Modernization to Resistance: Latin American Literature 1959-1976.” *Latin American Perspectives*, vol. 5, no. 1, 1978, pp. 77–97. *JSTOR*, http://www.jstor.org/stable/2633340.

Franco, Jean. *An Introduction to Spanish-American Literature*. Cambridge University Press, 2000.

Gokhale-Turner, Jayashree B. “The Dalit Panthers and the Radicalisation of the Untouchables.” *The Journal of Commonwealth & Comparative Politics* 17.1 (1979): 77–93. *The Journal of Commonwealth & Comparative Politics*. Web.

Hoagland, Sarah Lucia. “Aspects of the Coloniality of Knowledge.” *Critical Philosophy of Race* 8.1–2 (2020): 48–60. *Critical Philosophy of Race*. Web.

Jackson, Shirley A. “Theorizing Race, Class, and Gender Studies.” *Routledge International Handbook of Race, Class, and Gender* 1 Jan. 2014: 1–2. *Routledge International Handbook of Race, Class, and Gender*. Web.

Jefferson, Antonette. “The Rhetoric of Revolution: The Black Consciousness Movement and the Dalit Panther Movement.” *The Journal of Pan African Studies* 2.5 (2008): 46–59. *The Journal of Pan African Studies*. Web.

Kelly, R. Gordon. “Literature and the Historian.” *American Quarterly*, vol. 26, no. 2, 1974, pp. 141–59. *JSTOR*, https://doi.org/10.2307/2712232. Accessed 20 Jun. 2022.

Kikon, Dolly. “Dirty Food: Racism and Casteism in India.” *Ethnic and Racial Studies* 45.2 (2022): 278–297. *Ethnic and Racial Studies*. Web.

L. Gabrielsen, Ida, Marte Blikstad-Balas, and Michael Tengberg. “The Role of Literature in the Classroom: How and for What Purposes Do Teachers in Lower Secondary School Use Literary Texts?” *L1 Educational Studies in Language and Literature* 19, Running Issue.Running Issue (2019): 1–32. *L1 Educational Studies in Language and Literature*. Web.

Lichty, Lauren F., and Eylin Palamaro-Munsell. “Pursuing an Ethical, Socially Just Classroom: Searching for Community Psychology Pedagogy.” *American Journal of Community Psychology* 60.3–4 (2017): 316–326. *American Journal of Community Psychology*. Web.

Lugones, María, and Joshua Price. “The Inseparability of Race, Class, and Gender in Latino Studies.” *Latino Studies* 1.2 (2003): 329–332. *Latino Studies*. Web.

Mehra, Parmod Kumar, ed. *Literature and social change: emerging perspectives in Dalit literature*. Kalpaz Publications, 2015.

Mignolo, Walter D. “The Geopolitics of Knowledge and the Colonial Difference.” *South Atlantic Quarterly* 101.1 (2002): 56–96. *South Atlantic Quarterly*. Web.

Mittal, Sushil, and Gene Thursby, editors. *Religions of India: An Introduction*. 2nd ed., Routledge, 2017.

Narang, Harish, ed. *Writing Black, Writing Dalit: Essays in Black African and Dalit Indian Writings;[proceedings of the National Seminar on Black and Dalit Writings, Held at Shimla in 1997]*. Indian Institute of Advanced Study, 2002.

Narayan, Badri. *Documenting dissent: Contesting fables, contested memories, and Dalit political discourse*. Indian Institute of Advanced Study, 2001.

NAZİR, Thseen, and Liyana THABASSUM. "THE ROLE OF SOCIAL SYSTEMS IN THE CONCEPTION AND PERPETUATION OF BULLYING CULTURE IN INDIA." International Journal of Current Approaches in Language Education and Social Sciences (2021): 69–82. International Journal of Current Approaches in Language Education and Social Sciences. Web.

Omvedt, Gail. *Dalit visions: The anti-caste movement and the construction of an Indian identity*. Orient Blackswan, 2006.

Pandey, Aditya. "4 Racist Stereotypes Bollywood Shows towards the World, Proving We're Equally Flawed." *MensXP*, 21 Apr. 2021, https://www.mensxp.com/special-features/features/79528-racism-in-bollywood-stereotypes-that-the-indian-film-industry-shows-in-their-films.html.

Pasco, Allan H. "Literature as Historical Archive." *New Literary History*, vol. 35, no. 3, 2004, pp. 373–94. *JSTOR*, http://www.jstor.org/stable/20057844. Accessed 20 Jun. 2022.

Rai, Rohini. "From Colonial 'Mongoloid' to Neoliberal 'Northeastern': Theorising 'Race', Racialization and Racism in Contemporary India." *Asian Ethnicity* 23.3 (2022): 442–462. *Asian Ethnicity*. Web.

Rajgopal, Shoba Sharad. "Dalit/Black Solidarity: Comrades in the Struggle for Racial/Caste Justice." *South Asian Popular Culture* 19.1 (2021): 81–86. *South Asian Popular Culture*. Web.

Rawat, Ramnarayan. “Genealogies of the Dalit Political: The Transformation of Achhut from ‘Untouched’ to ‘Untouchable’ in Early Twentieth-Century North India.” *Indian Economic and Social History Review* 52.3 (2015): 335–355. *Indian Economic and Social History Review*. Web.

Ruman Sutradhar. “Dalit Movement in India: In the Light of Four Dalit Literatures.” *IOSR Journal of Dental and Medical Sciences* 13.4 (2014): 91–97. *IOSR Journal of Dental and Medical Sciences*. Web.

Sharma, Pradeep K. *Dalit politics and literature*. Shipra Publications, 2006.

Singh, Maanvender. “Relentless Racism Never End.” *Countercurrents.Org*, 7 Sept. 2016, https://countercurrents.org/2016/09/relentless-racism-never-end/.

Sium, Aman, and Eric Ritskes. “Speaking Truth to Power: Indigenous Storytelling as an Act of Living Resistance.” *Decolonization. Indigeneity, Education & Society* 22.1 (2013): I–X. Print.

Sundiata, Ibrahim K. “Caste, The Origins of Our Discontents: A Historical Reflection On Two Cultures.” *CASTE / A Global Journal on Social Exclusion* 2.1 (2021): 17–29. *CASTE / A Global Journal on Social Exclusion*. Web.

Syeed, Esa. “Conflict between Covers: Confronting Official Curriculum in Indian Textbooks.” Curriculum Inquiry 48.5 (2018): 540–559. Curriculum Inquiry. Web.

Webster, John CB. *Religion and Dalit liberation: An examination of perspectives*. Manohar, 1999.

Wilkerson, Isabel. *Caste: The Origins of Our Discontents*. , 2020. Print.

Wilkins, Burleigh Taylor. *Hegel’s Philosophy of History*. Cornell University Press, 1974.

Zembylas, Michalinos. “Pedagogies of Strategic Empathy: Navigating through the Emotional Complexities of Anti-Racism in Higher Education.” *Teaching in Higher Education* 17.2 (2012): 113–125. *Teaching in Higher Education*. Web.

सन्दर्भ सूचि:

"वीरेन्द्र सिंह यादव का आलेख - दलित चिन्तन : संघर्ष और मुक्ति के नये क्षितिज." रचनाकार, https://www.rachanakar.org/2010/08/blog-post_2176.html. Accessed 24 June 2022.

BBC News हिंदी. "कोई चिकन मोमोज़, तो कोई चाउमिन पुकारता है." *BBC*, BBC News हिंदी, 8 Nov. 2011, https://www.bbc.com/hindi/india/2011/11/111108_northeast_ml.

एंगडे,सुरज. "जातिवाद की जहरीली फसल." *Https://Caravanmagazine.in/Essay/Race-Caste-and-What-It-Will-Take-to-Make-Dalit-Lives-Matter-Hindi*, June 2021.

कुमार,राजेश. "दलित अस्मिता : पृष्ठभूमि और विकाश." *International Journal of Hindi Research*, vol. 2, no. 4, July 2016, pp. 71–73.

खुदशाह, संजीव. "डॉ. आंबेडकर ने मनुस्मृति का दहन क्यों किया?" फॉरवर्ड प्रेस, 25 Dec. 2018, https://www.forwardpress.in/2018/12/ambedkar-manusmriti-dalits-obc-tribes/.

जायसवाल,विशाल. "भारत के प्रगतिशील और उदारवादियों की समस्या है कि वे अपना घेरा तोड़कर समाज के बीच नहीं जाते." *The Wire - Hindi*, 5 Aug. 2021, https://thewirehindi.com/180878/caste-society-media-ghazipur-mein-christopher-caudwell-urmilesh/.

पाण्डेय, अनुराग कुमार. "दलित मिथक और वर्चस्व की वैचारिकी." *RESEARCH GURU* , vol. 11, no. 3, 2017.

रावत,विद्या भूषण. "जाति, नस्ल और रंग की बीमारी से गंभीर रूप से ग्रस्त भारतीय समाज." सबरंग, July 2017, https://hindi.sabrangindia.in/article/increased-religious-intolerance-india.

वाल्मीकिओमप्रकाश. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2005.

अध्याय 3:ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन:आलोचनात्मक सोच के कुछ वैचारिक मुद्दे

हर देश और समाज में शोषित, गुलाम और हासिये पर धकेल दिए गए लोगों को जब शोषण से मुक्ति मिलती है तब वे लोग अपने समाज, इतिहास और संस्कृतियों का मूल्यांकन करते हैं। लैटिन अमेरिकी देशों में डीकोलोनियालिटी के साथ-साथ ही ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन (एपिस्टीमिक डिसोबीडीअन्स) की उत्पत्ति हुयी जैसा कि विभिन्न इन्डिजनस साहित्यों में, कैपोएरा में, उनके चित्रों आदि में देखा जा सकता है।

नस्लवादी सोच इन्डिजनस और अश्वेत जानो को राष्टीय और सभ्य सामाजिक सीमान्त से बाहर रखना चाहते हैं । देश के गठन में अश्वेत लोगों की कोई हिस्सेदारी नहीं होनी चाहिए उनकी नागरिकता की स्थिति से इस तरह से समझौता किया जाता है कि उनके अपमान और उनके खिलाफ मानवाधिकारों के उल्लंघन को सुनिश्चित किया जा सके।

लैटिन अमेरिका में नस्लवाद या रंगभेद एक बहुत ही गंभीर मुद्दा रहा है जिसपे लम्बे समय से बहस चल रही है। बीसवी सदी के लैटिन अमेरिकी केनन में यह बहस बहुत

प्रचलित रही है जिसके केंद्र में यह मुद्दा रहा की क्या लैटिन अमेरिका में नस्लवाद को किस तरह से समझा जा सकता है?। अलग-अलग विचारकों और लेखकों की इस पर अलग-अलग राय है लेकिन इनमें से कुछ ग्रंथों को पढ़ने से यह पता चलता है कि विभिन्न सामाजिक और बौद्धिक अनुभव के माध्यम से नस्लवाद और एपिस्टीमिक उल्लंघन कैसे व्यक्त किया जाता है। यह अध्याय इस शोध का औचित्य है और इसलिए सबसे पहले एपिस्टीमिक उल्लंघन के वैचारिक मानचित्र को समझना महत्त्वपूर्ण है।

लैटिन अमेरिकी साहित्य में यह नए विचार नए मुद्दों और नए दृष्टिकोनो को जन्म देते हैं। यह सभी विचार उन प्रश्नों का उत्तर तलाशने की कोशिश करते हैं जिनके आधार पर समाज के एक बड़े वर्ग को हासिये पर धकेल दिया गया और उनके प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया गया। समानता और आत्मसम्मान को स्थापित करने की परिक्रिया में पहले से व्याप्त विचारों को जो काफ़ी हद तक यूरोपीय शोषकों और उनकी बनायीं हुयी संस्थाओं की देन थे उनका खंडन किया गया। शोषण की संरचनात्मक संस्थाओं पर वैचारिक हमले किया गए और शक्ति (पावर) को स्थापित और प्रमाणित करने वाले ज्ञान की नए सिरे से व्याख्या की गयी।

आनिबाल किखानो के डीकोलोनियालिटी इस विचार पर आधारित है कि उपनिवेश क्रूर था कि उसने ख़ुद को कई स्तरों पर लोगों को प्रभावित किया, और यह कि किसी भी समाज में उपनिवेशवादी ताकतों के चले जाने पर भी यह पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ है । लोगों को उनकी इच्छा के अधीन करने के लिए, औपनिवेशिक ताकतों ने सैन्य शक्ति, यातना और हिंसा के अन्य रूपों का इस्तेमाल किया। लेकिन उस

शक्ति को बनाए रखने के लिए, उन्होंने सामाजिक पदानुक्रम और विचारधाराओं की स्थापना की, जो दूसरों को बदनाम करते हुए अपने स्वयं के हितों को केंद्रीकृत करते हैं। देशी भाषाओं, धर्मों और सांस्कृतिक प्रथाओं को मना किया गया था, अक्सर कारावास या मृत्यु के जोखिम पर और (यूरोसेंट्रिक) शिक्षा को कुछ चुनिंदा लोगों को छोड़कर सभी के लिए अस्वीकार कर दिया गया था।

आनिबाल किखानो की थ्योरी इस बात को स्पष्ट कर देती है कि साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद ने उपनिवेशित लोगों को पूरी तरह से अस्त-व्यस्त कर दिया, उन्हें उनके इतिहास, उनके परिदृश्य, उनकी भाषाओं, उनके सामाजिक संबंधों और उनके सोचने, महसूस करने और दुनिया के साथ बातचीत करने के अपने तरीकों से अलग कर दिया। उपनिवेशवाद मानता है कि सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के इन रूपों के प्रभाव को उन लोगों के लिए पूर्ववत किया जाना चाहिए जो औपनिवेशिक उत्पीड़न से मुक्त या वंशज हैं।

आंबेडकर और पाउलो फ्रेइरे की शिक्षा का सन्देश वंचितों की मुक्ति का साधन

भारत में वंचित, दलित और महिलाओं के अधिकारों और बराबरी की लडाई लड़ने वाले डॉक्टर आंबेडकर को एक मसीहा का दर्जा प्राप्त है । उन्हें भारत के संविधान निर्माता के साथ-साथ समता और समानता की लड़ाई लड़ने वाले एक महान सामाजिक सिद्धांतकार के रूप में भी जाना जाता है । अम्बेडकर अपने लेखों, पुस्तकों, पत्रिकाओं और उनके द्वारा प्रकाशित समाचार पत्रों के माध्यम से पूरी दुनिया में अपने आप को एक महान विचारक के रूप में स्थापित करते हैं। पाउलो फ्रेइरे ब्राज़ील के एक

महान शिक्षाविद् है जो वंचितों और गरीबों की मुक्तिपरक शिक्षा के लिए जाने जाते हैं। यह दोनों ही व्यक्ति विकासशील देशों की सामाजिक और राजनितिक क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय और प्रतिष्ठित रहें हैं। विशेष रूप से उत्पीड़ित समूहों के बीच जो मान्यता और सामाजिक न्याय के लिए लड़ रहे हैं।

आज के समय में जब दुनिया भर से पीड़ित समुदाय उभर रहे हैं और शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद कर रहें हैं ऐसे में इनके विचारों पर चर्चा की आवशयकता है । गरीबों और वंचितों की दुनिया में न्याय, समानता और मानव की वर्तमान धारणाओं के संदर्भ में इन दोनों व्यक्तियों के विचारों की क्या प्रासंगिकता है इस पर एक तुलनात्मक विश्लेषण करना अति महत्त्वपूर्ण होगा कि कैसे इनके विचार और सिन्धांत वंचितों की लड़ाई में एक महत्त्वपूर्ण औजार का काम करते हैं। भारत की एक बड़ी दलित आबादी आज भी जातिगत अस्पृश्यता और शोषण का सामना प्रतिदिन कर रही है । यह लोग आज भी आर्थिक, सामाजिक और राजनितिक समानता के लिए संघर्ष कर रहें हैं।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में समाज सुधारकों ने अपनी पुस्तकों के माध्यम से ब्राह्मणवादी कर्मकांडों पर तीखा प्रहार किया था। ज्योतिराव फुले की गुलामगिरी उनमें से एक थी। दक्षिण में, पेरियार और नारायण गुरु ने वर्ण व्यवस्था के खिलाफ बिगुल बजाया। कुछ दशकों बाद अम्बेडकर आते हैं जो अपने आंदोलनों और लेखन से ब्राह्मणवाद पर पुरजोर हमला करते हैं और वह दलित समुदायों की समानता और दलित गरिमा के लिए संघर्ष करने वाले नायक बन जाते हैं। जाति उन्मूलन के अपने संघर्ष में

अम्बेडकर का मोहनदास गांधी से तनावपूर्ण सम्बंध रहें। अम्बेडकर जाति के पूर्ण विनाश का आग्रह करते हैं और गांधी इसके संरक्षण के लिए बहस करते हैं। गांधी ने अछूतों का नाम बदलकर "हरिजन" (भगवान के बच्चे) कर दिया, लेकिन दलितों ने "हरिजन" के लिए इस नामकरण को खारिज कर दिया था ।

फ्रेइरे की शिक्षा के सिन्धांत है ऐसे स्थान बनाना जहाँ न्याय और आशा की अवधारणाएँ उभरती हैं और क़ायम रहती हैं, दलित नेतृत्व के लिए फ्रेइरे की यह नीतियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। फ्रेइरे और अम्बेडकर दोनों ही अपने विचारो में अत्यंत क्रांतिकारी है जिसके कारण इन दोनों लोगों को अपने ही देश में लोगों की आलोचनाओ का सामना करना पड़ा।

अम्बेडकर का मानना था कि शिक्षा लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। उनका मानना था कि दलितों और वंचितों की मुक्ति का रास्ता शिक्षा से होकर ही जाता है। उनका नारा था "शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो"। हालाँकि, शिक्षा पर उनके विचारों को दलित मुक्ति के लिए उनके मौलिक कार्यों से ग्रहण किया गया था। "शिक्षित बनो" उनके प्रसिद्ध नारे का पहला शब्द है जिसका अर्थ यह हुआ कि मानव चरित्र और चेतना के निर्माण में शिक्षा की निर्विवाद भूमिका है। एक शिक्षित व्यक्ति ही अपने वर्ग हितों को समझ सकता है और वर्ग एकता ला सकता है। शिक्षा व्यक्ति को संघर्ष के पथ पर अग्रसर करती है। डॉ अम्बेडकर ने कहा, "शिक्षा ही व्यक्ति को निडर बनाती है, उसे एकता का पाठ पढ़ाती है उसे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करती है और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए

प्रेरित करती है"। उनका मानना था कि शिक्षा एक आंदोलन है। यदि यह अपने उद्देश्यों को पूरा नहीं करता है, तो यह बेकार है। डॉ अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से कहा कि जो शिक्षा किसी व्यक्ति को सक्षम नहीं बनाती है, जो उसे समानता और नैतिकता नहीं सिखाती है, वह सच्ची शिक्षा नहीं है। सच्ची शिक्षा मानवता को पालती है, आजीविका के स्रोत उत्पन्न करती है, ज्ञान प्रदान करती है और हमें समतावाद से भरती है। सच्ची शिक्षा समाज को जीवंत बनाती है। (मीनाक्षी मीणा 2017) । अम्बेडकर अपने नारे से यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि वंचित और दलित समुदाय बिना शिक्षा के न्याय और समानता की लडाई नहीं लड़ सकता है ।

फ्रेइरे की आलोचना जिसे उन्होंने 'बैंकिंग शिक्षा' कहा है, की खोज की गई है, साथ ही 'संवाद' और 'विवेकीकरण' को मुक्ति के लिए उनकी शिक्षा की प्रमुख अवधारणाओं के रूप में देखा गया है। फ्रेइरे की मुक्त शिक्षा को समझने की कुंजी उनकी विवेकीकरण की अवधारणा को समझना है, जो फ्रेइरे की सभी अवधारणाओं में से सबसे मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। इसके सबसे बुनियादी रूप में, विवेक को उस प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है जिसके द्वारा मनुष्य अपने उत्पीड़न के स्रोतों के बारे में अधिक जागरूक हो जाते हैं। हमने पहले देखा कि जानवरों के विपरीत, मनुष्य में दुनिया और उसकी गतिशीलता (अर्थात स्वयं इतिहास) पर प्रतिबिंबित करने की क्षमता होती है और प्रतिबिंब के आधार पर भविष्य की कार्यवाही का एक निश्चित पाठ्यक्रम चुनता है। हमने यह भी देखा कि इस सम्बंध में उत्पीड़ित वंचित हैं। हो सकता है कि उनमें बौद्धिक विश्वास न हो-उदाहरण के लिए यदि वे अनपढ़ हैं-'दुनिया को प्रतिबिंबित'

करने के लिए और परिवर्तन के लिए अपना एजेंडा तैयार करने के लिए। वे इस बात से अनजान हो सकते हैं कि जिस गरीबी / उत्पीड़न / निरक्षरता से वे पीड़ित हैं, वह एक स्थायी तथ्य नहीं है, बल्कि समाज में अन्यायपूर्ण संरचनाओं और तंत्रों के संचालन का परिणाम है, जिसे एक बार समझने के बाद बदला जा सकता है। सबसे बढ़कर, उन्होंने 'उत्पीड़कों के मूल्यों' को आत्मसात कर लिया होगा और इस प्रकार दुनिया में अपनी स्थिति के बारे में गंभीर रूप से सोचने के लिए ख़ुद को असमर्थ, या अनिच्छुक पाते हैं और ऐसी स्थिति में सुधार के लिए उनके लिए कौन से कार्य खुले हैं (Freire, 1972, p 24)।

तब, विवेकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा उत्पीड़ितों द्वारा-अपने और अपने समुदाय और अंततः, जिस समाज में वे रहते हैं-द्वारा आलोचनात्मक सोच की क्षमता का विस्तार किया जा सकता है। जिस तरह मनुष्य के औपचारिक और ऐतिहासिक व्यवसाय को कुछ सामाजिक रूप से निर्मित संरचनात्मक अवरोधों द्वारा विफल किया जा सकता है, उसी तरह वास्तविकता की किसी की धारणा कुछ मनोवैज्ञानिक रूप से सीमित करने वाले कारकों से ढकी हो सकती है। इस प्रकार, एक स्तर पर, विवेकीकरण, या जागरूक होने की प्रक्रिया, एक ऐसा स्थान प्रदान करती है जिसमें किसी की वास्तविकता की धारणा बदल सकती है। यह उत्पीड़ित व्यक्ति की अधिक से अधिक मानवीकरण की खोज की दिशा में पहला क़दम है।
क्रिया और प्रतिबिंब। लेकिन विवेकीकरण एक विशुद्ध बौद्धिक प्रक्रिया से कहीं अधिक है। यह एक गतिशील, या द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है, जिसका एक समान रूप से महत्त्वपूर्ण

घटक क्रिया है। विवेक में, क्रिया आगे प्रतिबिंब की ओर ले जाती है और इसी तरह, बढ़ती मुक्ति के द्वंद्वात्मक मार्ग में। इस प्रकार विवेक दो अविभाज्य, पारस्परिक रूप से समृद्ध और प्रामाणिक रूप से मानवीय क्षमताओं से बना है-क्रिया और प्रतिबिंब, या प्रतिबिंब पर आधारित क्रिया और क्रिया के आधार पर प्रतिबिंबित।

फ्रेइरे पश्चिमी विचारों के प्रतिबिंब और क्रिया के कृत्रिम पृथक्करण, एक ओर सिद्धांत और दूसरी ओर अभ्यास के आलोचक थे (Aronowitz, 2012)। उन्होंने दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू के रूप में देखा। यह मुक्त करने वाली गतिशील क्रिया-प्रतिबिंब है , जो दोनों से उत्पन्न होती है और वैज्ञानिकीकरण की प्रक्रिया को पोषित करती है, फ्रेयर इसे प्रैक्सिस बुलाते है। प्रैक्सिस, जिसे सिद्धांत और क्रिया के संलयन के रूप में भी समझा जा सकता है, फ्रेयर की शिक्षाशास्त्र की जड़ में निहित है और फ्रायर जिसे बैंकिंग शिक्षा कहा जाता है, उसमें निहित पदानुक्रमित और दमनकारी प्रवृत्तियों का सामना करना पड़ता है।

पाउलो फ्रेइरे अपनी पुस्तक पेडगोजी ऑफ़ द अप्रेस्ट में शोषण के चार उपकरण और मुक्ति के चार उपकरणों को परिभाषित करते हैं। वह कान्क्वेस्ट शब्द का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ है जीत जिसका वर्णन है कि कैसे कोई वर्ग या संस्कृति किसी दुसरे पर अधिकार कर लेता है। वे यह सुनिश्चित करके सत्ता बनाए रखते हैं कि उत्पीड़ित लोग अपने लिए न सोचें। मनिप्यलैशन शोषण के दुसरे उपकरण जिसका अर्थ है हेरफेर इसके बारे में वह कहते हैं कि ऐसे वर्ग अपने मिथकों को फैलाने के लिए प्रचार और जनसंचार माध्यमों का उपयोग कर सकते हैं। शोषण का तीसरा उपकरण है डिवाइड

एंड रूल (फूट डालो और राज करो) इसमें शोषक शोषितों को छोटे-छोटे समूहों में बाँट देता है और उन्हें एक दुसरे के खिलाफ़ खड़ा कर देता है । यह रणनीति यह सुनिश्चित करती है शोषित कभी भी अल्पसंख्यक शोषितों के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए एकजुट नहीं हो सकते। कल्चरल इन्वैश़न (सांस्कृतिक आक्रमण) उत्पीड़न का एक अन्य उपकरण है कि कैसे शोषकों ने शोषितों की संस्कृति को मिटा दिया और अपनी संस्कृति को श्रेष्ठ बताया। यह शोषित लोगों को परिवर्तन के लिए प्रयास करने के लिए मजबूर करता है और यह स्वतः ही सत्ता का एक हाइरार्की बनाता है क्योंकि शोषित अपने शोषकों की तरह बनने का प्रयास करते हैं।

फ्रेइरे शोषितों को शोषकों के विरुद्ध लड़ने और मुक्ति के चार उपकरणों की चर्चा करते हैं। कोआपरेशन (सहयोग) मुक्ति के चार साधनों में से एक, यदि सभी एकजुट होकर काम करे तो हाइरार्की को समाप्त किया जा सकता है तथा समस्याओं को भी हल किया जा सकता है। इसमें किसी एक समूह को दूसरे से "होशियार" या "अधिक महत्त्वपूर्ण" या "बेहतर" नहीं समझा जाता है। यूनिटी फॉर लिबरेशन (मुक्ति के लिए एकता) एक उपकरण है जो उत्पीड़ित लोगों को उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने के लिए एक साथ आने में मदद करता है। आर्गेनाइजेशन एंड कल्चरल सिंथेसिस (संगठन और सांस्कृतिक संश्लेषण) के माध्यम से, मुक्ति के अन्य दो उपकरण, उत्पीड़ित लोगों को सत्ता वापस मिलती है क्योंकि वे अन्य संस्कृतियों के उत्पीड़ित लोगों से जुड़ते हैं। समूह तब भविष्य के लिए एक समेकित योजना बनाने के लिए विभिन्न संस्कृतियों के विचारों को एक साथ लाते हैं, या संश्लेषित करते हैं। (freire,1972,ch.4)

अम्बेडकर ऐसा मानते थे कि समानता और न्याय के सिद्धांतों पर आधारित समाज के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा एक अनिवार्य शर्त थी। आज के जाति-मज़हब आधारित विषाक्त सामाजिक-राजनैतिक वातावरण में अम्बेडकर के शिक्षा पर विचारों की प्रासंगिकता और बढ़ गई है। व्यापक अध्ययन एवम् चिंतन-मनन के बल उन्होंने भारत के स्वाधीनता संग्राम में एक नयी अंतर्वस्तु भरने का काम किया। वह यह था कि दासता का सबसे व्यापक व गहन रूप सामाजिक दासता है और उसके उन्मूलन के बिना कोई भी स्वतंत्रता कुछ लोगों का विशेषाधिकार रहेगी, इसलिए ऐसी स्वतंत्रता ही अधूरी होगी। (NCERT,2007)

अम्बेडकर के सामाजिक-दार्शनिक विचार समतावाद के आधार पर टिके थे। मानवीय गरिमा और स्वाभिमान उनके सामाजिक दर्शन के केंद्र में थे। वह समाज में न्याय, समानता, बंधुत्व, स्वतंत्रता और निर्भयता स्थापित करने के लिए शिक्षा का उपयोग करना चाहते थे। वह जन्म आधारित समाज को मूल्य आधारित समाज से बदलना चाहते थे। यह बिना कहे चला जाता है कि इन नैतिक मूल्यों को शिक्षा के माध्यम से ही बढ़ावा दिया जा सकता है। डॉ अम्बेडकर महिलाओं की शिक्षा के लिए भी अत्यंत चिंतित और गंभीर थे उनका मानना था कि महिलाओं में शिक्षा की कमी भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या थी। उन्होंने भारत में महिलाओं और दलितों की दयनीय स्थिति के लिए ब्राह्मणवाद को ज़िम्मेदार ठहराया। अम्बेडकर ब्राह्मणवाद और जातिवाद से अपने आप को मुक्त करना चाहते थे।

एपिस्टीमिक डिसोबीडीअन्स /ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन

लैटिन अमेरिकी संदर्भ में एपिस्टीमिक डिसोबीडीअन्स को समझने का सबसे कठिन हिस्सा इसका हिंदी में वैचारिक अनुवाद है। 'एपिस्टेमिक' एक विशेषण है जबकि हिंदी शब्द 'ज्ञानमीमांसा' एपिस्टेमोलॉजी की तरह एक संज्ञा है। अपने राजनीतिक इतिहास के संदर्भ में 'एपिस्टीमिक' का कुछ स्पष्ट समस्याकरण है 'एंट्रोपोफैगिया', 'नेपेंटलिसमो' और 'बॉर्डर्स'। ये राजनीतिक अंतर्दृष्टि अधीनस्थ ज्ञान को एजेंसी और गरिमा देता है।

एपिस्टीमिक की ये समझ वाल्टर मिन्योलो, ओसवाल्ड एंड्राडे (ब्राजील), अब्दुररमान खतीबी (मोरक्को) और ग्लोरिया अंजलदुआ (मेक्सिको) से ली गई है (Mignolo, 2000) । इसलिए अनुवाद समस्याग्रस्त हो जाता है क्योंकि यह उपनिवेशवाद से संबंधित एक अवधारणा के बारे में है। ये अवधारणाएं शोषित के नरभक्षण से संबंधित हैं (एंट्रोपोफैगी), या अस्पष्ट सीमाओं या सीमाहीनता (नेपेंटलिसमो) से सम्बंधित है और इस प्रकार उन्हें गैर-विनम्र और गैर-निष्क्रिय के रूप में प्रस्तुत करती हैं। ज्ञानमीमांसात्मक इसलिए ' एपिस्टीमिक ' का एक समझौता किया हुआ अनुवाद है।

हम पहले के अध्यायों में देख चुके हैं कि कैसे उपनिवेशवाद पूंजीवाद और मानव शोषण का स्थायीकरण था। उपनिवेशवाद और ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन के सम्पर्क परस्पर निर्भरशील है और महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह विचार की यूरोकेन्द्रित प्रणालियों के आधार और नियंत्रण पर प्रश्नचिह्न लगाता है। वाल्टर मिन्योलो की एपिस्टेमिक डिकोलोनियलिटी एंट्रोपोफैगिया, नेपेंटलिसमो (Nepantlismo) और बॉर्डर-थिंकिंग के

साथ अपने जटिल संबंधों के कारण समझने के लिए एक कठिन अवधारणा है। इसलिए " एपिस्टीमिक " की अवधारणा एक गैर-आधिपत्य, गैर-श्वेत और गैर-निष्क्रिय रुख से भरी हुई है जो नरभक्षण (cannibalism) के माध्यम से उलंघन करता है, सफेद यूरोसेंट्रिक ज्ञान प्रणालियों का सामना करता है और खेलता/छेड़ता है उनसें उन्हें जो उन्हें लक्षित करते हैं। इस प्रकार एपिस्टीमिक डिसोबीडीअन्स एक सोच प्रक्रिया के साथ सीधे टकराव के बारे में है जो नस्लवाद के कथित वैज्ञानिकता के आधार पर अश्वेत लोगों के शोषण को सही ठहराता है।

“नस्ल” लैटिन अमेरिका में सामाजिक विभाजन का एक तंत्र

लैटिन अमेरिका में रेस या नस्ल का निर्माण यूरोपीय उपनिवेशवादियों के आगमन के बाद शुरू हुआ। धीरे धीरे यहाँ पर नस्ल से सम्बंधित विचार बड़े पैमाने पर पुरे लैटिन अमेरिका में फ़ैल गए। लैटिन अमेरिका में नस्ल का मुद्दा अन्य देशों और महाद्वीपों से काफ़ी भिन्न हैं यह केवल चमड़ी, बाल और आँखों के रंगों से निर्धारित नहीं होता हैं ।

लैटिन अमेरिका में जब नस्ल की बात की जाती तब उसमे काफी व्यापकता और विभिन्नता देखने को मिलती हैं जो की समय के साथ साथ एक संस्कृति का रूप धारण कर चुकी हैं । यहाँ के समाज में मुख्य रूप से “काले” अफ़्रीकी मूल के लोग जिन्हें यूरोपीय अपने साथ दास अथवा गुलाम के रूप में लेकर आये। “वाइट” यूरोपीय उपनिवेशवादी और उनके वंशज जो यही पर बस गए। इंडियन या स्वदेशी लोग जो यूरोपीय उपनिवेशवादियों के आक्रमण से पहले यहाँ रहते थे

और सबसे अंत में “मेस्तिसाखे” जो स्पेनिश और पुर्तगाली तथा इन तीन आबादी के बीच हुए जैविक मिश्रण से सम्बंधित हैं। (Wade, Peter (1997)

यूरोपीय, अफ्रीकियों और इन्डिजनस लोगों के बीच आनुवंशिक और सांस्कृतिक मिश्रण संपर्क के तुरंत बाद शुरू हुआ, हालांकि कुछ “कुलीन” यूरोपीय लोगों ने मिश्रण को अस्वीकार कर दिया। इन मिश्रित संतानों को जिन्हें मेस्तिसोस कहा जाता था ऐसे लोगों को उनके माता-पिता से सामाजिक रूप से अलग माना जाता था, और इस प्रकार एक नए सामाजिक वर्गीकरणों का प्रसार हुआ। हालांकि मेस्तिसोस अर्थात मिश्रित व्यक्ति एक सामान्य श्रेणी थी, जो की विशेष रूप से स्वदेशी और यूरोपीय विरासत के लोगों के लिए संदर्भित होता है, जबकि शब्द मुलातो आमतौर पर अफ्रीकी और यूरोपीय मूल के व्यक्ति को संदर्भित करता है।

समय बीतने के साथ इनमे कई और श्रेणियाँ जुड़ गयीं जैसे कि ज़ाम्बो जो कि काले और स्वदेशी/इंडियन का मिश्रण थी और *पार्दो* जिसका अर्थ है भूरा व्यक्ति आमतौर पर अफ्रीकी और यूरोपीय मूल के व्यक्ति को निरूपित करने के लिए उपयोग किया जाता था। स्पैनिश उपनिवेशवादियों ने सामाजिक-नस्लीय वर्गों के एक पदानुक्रम को व्यवस्थित करने का प्रयास किया, जिसे सोसिएदाद दे कास्तास ("जातियों का समाज, या नस्लों") के रूप में जाना जाता है।

सभी मामलों में, मिश्रण को ऐसे समायोजित किया गया है कि सभी यूरोपीय सामाजिक, आर्थिक और सैन्य रूप से प्रभावशाली हो और इस प्रकार काले और /इंडियन लोगों के श्रम का शोषण होता था। स्वदेशी लोग धार्मिक अभ्यास जैसे क्षेत्रों में

सांस्कृतिक परिवर्तनों को लागू करने या कम से कम लागू करने का प्रयास करने में असक्षम थे। हालांकि, कई अश्वेत और स्वदेशी लोगों ने औपनिवेशिक शक्तियों का विरोध किया। उन्होंने कई विद्रोह किए, और बड़ी संख्या में पलायन कर भीतरी इलाकों में चले गए, जहां वे मौजूदा समुदायों में शामिल हो गए या फिर से जुड़ गए या नई बस्तियां शुरू कर दीं। इस प्रकार के शोषण और असामनता को समाप्त करने के लिए लैटिन अमेरिका कई नेताओ, चिंतकों और लेखकों ने अपने अपने विचारों से इसका खंडन किया और इसे समाप्त करने के लिए काम किया।

इसी सन्दर्भ में जब लैटिन अमेरिका के साहित्य और दर्शनशास्त्र में नस्ल के विमर्श पर लिखे साहित्य और व्याख्यानों का अध्यन करे तो ये मालूम पड़ता है की स्पेनिश उपनिवेश से मुक्ति के पश्चात वहाँ के बुद्धिजीवियों में नस्ल के प्रश्न पर एक विस्तृत डिबेट काफी लम्बे समय से चल रही है। ये डिबेट अब लैटिन अमेरिका के अकादमिक जगत से बाहर दुनिया के अलग अलग क्षेत्रों में भी चर्चा का विषय बन चुकी है। लैटिन अमेरिका के प्रमुख चिंतको की बात करें तो खोसे मारती, खोसे कार्लोस मारियातेगी, रोबेर्तो फेर्नान्देज़ रेतामार, निकोलास गियेन, जोसे मरिया अर्गेदास इत्यादि प्रमुख है जो अपने लेखों में लैटिन अमेरिकी नस्ल के विमर्श पर विस्तृत चर्चा करते हैं ।

खोसे मारती : नस्लवाद के अस्तित्व का खण्डन और बहु-सांस्कृतिक एकीकरण

खोसे मारती क्यूबा के राष्ट्रीय नायक हैं और लैटिन अमेरिकी साहित्य में एक प्रमुख व्यक्ति हैं तथा क्यूबा के जाने माने कवि हैं। मारती के स्वतंत्रता के विचार नस्लीय समानता पर आधारित हैं इनके अनुसार क्यूबा में नस्ल पर आधारित कोई शोषण नहीं

हो सकता हैं क्योंकि कि यहाँ कोई नस्ल नहीं है (Martí,1893)। खोसे मारती का मानना था कि क्यूबा एक नस्ल विहीन राष्ट्र है क्यूंकि यहाँ के लोग एक होकर स्वतत्रता की लडाई में स्पेन के विरुद्ध लड़ें थे। उनका मानना था कि लैटिन अमेरिका में एक सामान पहचान बने जो कि सांस्कृतिक रूप से स्पेन से अलग हों। मारती का एक अत्यंत प्रसिद्ध लेख “मी रासा” पातरिया नामक अख़बार में प्रकाशित हुआ जिसमे इन्होने नस्ल के मुद्दे पर एक अत्यंत गंभीर और व्यापक चर्चा की। मारती के दुसरे साहित्यों की तरहं ही उनका यह लेख भी पूरी तरह से नस्लवाद के विरोध में था जो उन्होंने अपने अनुभवों से सीखा था।

मारती को लैटिन अमेरिका में गुलामों के जीवन ने बहुत प्रभावित किया था उन्होंने खदानों में काम करने वाले गुलामों को मार खाते और फांसी पर लटकते देखा था। मारती का लेख उनके लगभग सभी राजनीतिक लेखन और भाषणों के ऐसे अंश हैं जिनका उद्देश्य इस बात को स्पष्ट करना है कि भविष्य में क्यूबा में नस्लीय भेदभाव के लिए कोई जगह नहीं होगी और मुक्ति संग्राम से सबसे शुद्ध और सबसे आवश्यक लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों के आधार पर एकता की भावना प्रबल की जाएगी।

"मी रासा" उन कई विषयों और मुद्दों को स्पष्ट करता है जिन पर मारती ने अपने पिछले लेखों में चर्चा की थी। मारती अपने विचारों को इतनी गहराई और तीव्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं की इस लेख को अंतरजातीय/इन्टररेसिअल संबंधों पर उनका सबसे उन्नत कार्य माना जा सकता है। यह लेख न केवल नस्लवाद के समाधान के लिए मूल प्रस्तावों की एक श्रृंखला प्रस्तुत करता है बल्कि उस युग में समाज के विश्लेषण पर जोर

भी देता है। मारती नस्लीय श्रेष्ठता के सभी तर्कों को खारिज करते हुए सभी लोगों द्वारा साझा की गई आध्यात्मिक पहचान की घोषणा करते हैं।

खोसे मारती इस बात पर अत्यंत जोर देते हैं कि ट्रांसकल्चरेशन क्यूबा में नस्लीय संघर्ष को समाप्त कर देगा। वह कहते हैं कि "जब एक काला व्यक्ति खुद को दुसरे लोगों से अलग कर लेता है तो वह गोरे लोगों को भी ऐसा करने के लिए उकसाता हैं" (mi raza)। जब वह कहते हैं "नस्ल को मिश्रित किया जाना चाहिए" तो यह बात स्पष्ट हो जाती कि मेस्टिज़ो पहचान एक ऐसी पहचान है जो क्यूबा में एथेनिसिटी को मजबूती प्रदान कर सकती हैं। मेस्तिसाखे एक ऐसा विकल्प है जो क्यूबा के भविष्य को निर्धारित कर सकता है लेकिन यह एक एक स्वैच्छिक विकल्प से कहीं अधिक होना चाहिए। यह एक स्वाभाविक और अविभाज्य प्रक्रिया होनी चाहिए।

खोसे मारती लैटिन अमेरिका में अमेरिका में नस्लीयकरण की समस्याओं को गैर-यूरोपीय परंपरा और संस्कृति के बहुसांस्कृतिक एकीकरण के साथ हल करने का सुझाव देते हैं। वह कहतें है कि नस्लीय विभिन्नताओं को सामाजिक पदानुक्रम बनाने के बजाय, नस्लीयकरण को उस संस्कृति का जश्न मनाना चाहिए जो एक संस्कृति को अद्वितीय और अद्भुत बनाता है।

वे लोग जो खुद को किसी प्रकार के दायरे में समेट कर रखते हैं वास्तव में नस्लीय रूप से प्रगतिशील दुनिया में पीछे छूट जातें है। मारती अंतर-सांस्कृतिक आदान प्रदान का प्रस्ताव रखते हैं , जो कि देशी संस्कृति और दुनिया के अन्य भागों से क्यूबा में लायी गयी संस्कृति पर आधारित हैं। एफ्रो-क्यूबा के लोगों का सांस्कृतिक नुकसान ने

उन्हें सांस्कृतिक रूप से विस्थापित कर दिया था, क्योंकि उनकी भाषाओं, परंपराओं और धर्मों के अभ्यास की जांच-पड़ताल की गई थी। संस्कृतियों का मिश्रण, आदतें, भोजन, हावभाव और धर्म एक नया आयाम प्रदान करते हैं क्योंकि विभिन्न लोगों के जीवन के अनुभव एकजुट होते हैं। उस विविधता का बच्चा एक सार्वभौमिक प्राणी बनकर उभरता है। मारती द्वारा अनुमानित क्यूबा में होने वाले आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन सैद्धांतिक रूप से लोकप्रिय जनता और सबसे अधिक भेदभाव वाले समूहों के लिए रहने की स्थिति में सुधार करेंगे, जो नस्लवाद के उन्मूलन में एक महत्वपूर्ण कदम होगा। शिक्षा और संस्कृति तक जन पहुंच, लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण भावना के साथ प्रयोग, मानव उत्थान में योगदान देगा और पूर्ण सामाजिक विकास में बाधा डालने वाले पूर्वाग्रहों को खत्म करने में मदद करेगा।

खोसे मारती के नस्लवाद विरोधी विचार मानवीय दृष्टिकोण से परिपूर्ण और राष्ट्रवाद से प्रेरित थे। वो बहुत ही स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कोई भी धारणा या विश्वास जो एक व्यक्ति को दुसरे व्यक्ति से अलग करे , उन्हें आपस में बांटे, उनमे कोई अंतर स्थापित करे या श्रेष्टता एवम् उच्चता का भाव पैदा करे वो मानवता के खिलाफ किया गया पाप है। कोई व्यक्ति अपने आप को किसी भी नस्ल का माने परन्तु उसकी सबसे पहली और महत्वपूर्ण पहचान हैं मनुष्य होना जो कि वाइट, मुलातो और नेग्रो से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है। व्यक्ति किसी भी रंग या नस्ल का क्यों न हो लेकिन उसकी नस्ल या उसकी चमड़ी का रंग उसकी शिक्षा और योग्यता में बाधक नहीं बननी चाहिए क्यूंकि शिक्षा सभी मनुष्यों का हक़ हैं। मनुष्य होने का यही अर्थ है की प्रत्येक

व्यक्ति को सामान आधिकार मिलने चाहिए , नस्ल के आधार पर किसी व्यक्ति के साथ भेदभाव नहीं होना चाहिए। एक काला व्यक्ति जब यह कहता है कि उसके रंग में या उसकी शारीरिक बनावट में कुछ विशेषता है तो उसे किसी गोरे व्यक्ति को नस्लवादी कहने का कोई आधिकार नहीं हैं क्यों कि नस्ल के आधार पर किसी भी गुण या विशेषता को दर्शाना भी नस्लवाद ही हैं।

खोसे कार्लोस मारियातेगी और इंडियनस की समस्या: नस्लवाद या वर्ग संघर्ष

खोसे कार्लोस मारियातेगी लैटिन अमेरिका के प्रथम मूल मार्क्सवादी माने जाते हैं। वह पेरू के एक अत्यंत महत्वपूर्ण बुद्धिजीवी, पत्रकार, कार्यकर्ता और राजनीतिक दार्शनिक थे। उन्हें बीसवी शताब्दी के सबसे प्रभावशाली लैटिन अमेरिकी समाजवादियों में से एक माना जाता है। वह एक स्व-शिक्षित मार्क्सवादी थे, उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया कि एक समाजवादी क्रांति को स्थानीय परिस्थितियों और प्रथाओं के आधार पर लैटिन अमेरिका में व्यवस्थित रूप से विकसित होना चाहिए, वह यूरोपीय व्यवस्था के लैटिन अमेरिका में लागू करने के विरोधी थे। उन्होंने वर्ग संघर्ष, पूंजीवाद और मूल निवासियों के मुद्दों पर विस्तृत रूप से लिखा और उनकी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से व्याख्या की। उनके द्वारा किये गए काम आज लैटिन अमेरिका में दक्षिणपंथी विचारों का विरोध और सामना करने के लिए बेहद प्रासंगिक और महत्वपूर्ण माने जाते है।

मारियातेगी ने में एक अत्यंत महतवपूर्ण पुस्तक 1928 में लिखा *“सिएते एनसायोस सोब्रे ला रियालीदाद पेरुआना“* (पेरू की वास्तविकता पर सात व्याख्यात्मक

निबंध) जो लैटिन अमेरिका में व्यापक रूप से पढ़े जाते हैं, और इसे लैटिन अमेरिकी सदी के सबसे व्यापक, गहन और सबसे स्थायी कार्यों में से एक कहा जाता है। पेरू की वास्तविकता पर सात व्याख्यात्मक निबंध, जिसमें उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से पेरू की सामाजिक और आर्थिक स्थिति की जांच-पड़ताल करते हैं। निबंध में एक नए मुक्ति एजेंडे को अभिव्यक्ति दी गयी जो स्पष्ट रूप से एक दोहरे दृष्टिकोण के संदर्भ में विस्तृत है।

मारियातेगी निबंधों ने आर्थिक विकास, स्वदेशी लोगों के मुद्दे, भूमि वितरण, शिक्षा प्रणाली, धर्म और साहित्य - सभी को एक शानदार मार्क्सवादी दृष्टिकोण से संबोधित किया। लैटिन अमेरिका की ऐतिहासिक वास्तविकता, इसकी स्वदेशी और क्रियोल पृष्ठभूमि के साथ संकटों को परिभाषित किया तथा लैटिन अमेरिकी राष्ट्रों के भीतर गंभीर नस्लीय, जातीय और वर्ग विभाजन के मुद्दों पर भी गंभीर चिंतन किया। इसके अलावा इसी निबंध में, मारियातेगी ने देश की रुकी हुई अर्थव्यवस्था और इस क्षेत्र में इन्डिजनस लोगों की दयनीय स्थिति के लिए लातीफुन्दो, या बड़े भूमि-मालिकों को दोषी ठहराया. उन्होंने इन भू-मालिकों को पूंजीवादी कहा। उन्होंने देखा कि उस समय पेरू में सामंती समाज की कई विशेषताएं थीं। उन्होंने तर्क दिया कि समाजवाद के लिए संक्रमण इंडियन द्वारा प्रचलित सामूहिकता के पारंपरिक रूपों पर आधारित होना चाहिए।

लैटिन अमेरिका में कॉमिन्टर्न[3] ने एंडीज पर्वतीय क्षेत्रों में *केचुआ* और *आयमारा* इंडियनस के लिए एक इंडियन गणराज्य बनाने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव पर प्रतिक्रिया देते हुए मारियातेगी ने इसे ठुकरा दिया और उन्होंने कहा की इंडियनस की समस्या नस्ल नहीं हैं। उन्होंने कहा की मूल समस्या एथनिसिटी और क्लास हैं, यदि नस्ल के आधार पर गणतंत्र बनाते हैं तो वंचितों की संख्या और बढ़ेगी। जमीन के असमान बंटवारे के लिए नस्ल सिर्फ एक कंबल है वह राष्ट्रीय समस्या नहीं हैं। वर्ग और नस्ल आपस में जुड़े हुए हैं इसलिए एक सामाजिक क्रांति लाने के लिए इंडियनस को श्रमिकों से जुड़ना चाहिए। मारियातेगी ने कृषि प्रश्न और इन्डिजनस प्रश्न को घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ देखते हैं वो कहते हैं कि सबसे पहले और सामंतवाद को खत्म करने से बहुत सी समस्यायों को समाप्त किया जा सकता हैं। सामंतवाद के दो महत्वपूर्ण अंग हैं लातीफुन्दो और गुलामी। इंडियनस पर अत्याचार करने वाली दासता को तब तक समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि लातीफुन्दो को समाप्त नहीं कर दिया जाता (Mariátegui, 2011)।

इसलिए जब उन्होंने " इंडियनस की समस्या" (Mariátegui, 2008, page 35)। के बारे में लिखा, तो वे केवल नस्लीय या सांस्कृतिक उत्पीड़न के प्रश्न के बारे में बात नहीं कर रहे थे। जैसा कि उन्होंने कहा, " इंडियनस की समस्या हमारी अर्थव्यवस्था की भूमि काश्त प्रणाली में निहित है"। उन्होंने उस समय के स्वदेशी लोगों की शासन करने वाली विचारधारा के खिलाफ विद्रोह किया, जिन्होंने इन्डिजनस अधिकारों के मुद्दे को

[3] कॉमिन्टर्न कम्युनिस्ट इंटरनेशनल का संक्षिप्त रूप है। इसे थर्ड इंटरनेशनल के रूप में भी जाना जाता है जिसकी स्थापना 1919 लेनिन के द्वारा हुई थी।

नागरिक अधिकारों के प्रश्न के रूप में सोचा था जिसे शिक्षा से दूर किया जा सकता है या एक मेस्तिसो जाति के निर्माण के माध्यम से पार किया जा सकता है (यानी, गोरों के साथ अंतर्जातीय विवाह के माध्यम से बनाया गया)। उन्होंने मारियातेगी ने तर्क दिया कि समाजवादी केवल इंडियनस के शिक्षा या संस्कृति के अधिकार पर जोर देने के लिए संतुष्ट नहीं हैं; वे भूमि पर अमेरिकी मूलनिवासी लोगों के अधिकारों का दावा करते हैं और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, अमेरिकी मूलनिवासी लोगों को लातीफुन्दो को उखाड़ फेंकना होगा और जमीन को किसान, बटाईदार और खेतिहर मजदूर के हवाले करना होगा.

रेतामार का कालिबान : लैटिन अमेरिकी संस्कृती और इतिहास का 'नायक'

रोबेर्तो फेर्नान्देज़ रेतामार क्यूबा के प्रसिद्ध कवि, निबंधकार, और साहित्यिक आलोचक हैं। वह *कासा दी लास अमेरिकास* के अध्यक्ष भी थे, जो क्यूबा सरकार का एक संस्थान है जिसका उद्देश्य लैटिन अमेरिकी और कैरिबिआई देशों के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों का विकास और विस्तार करना है। उन्होंने कासा दी लास अमेरिकास नामक सांस्कृतिक पत्रिका की स्थापना की तथा दर्जनों लेख और कविताओं के संग्रह लिखे। उनका सबसे प्रसिद्ध लेख '*कालीबान और अन्य निबंध*' (Caliban y otros ensayos) जिसमे वह लैटिन अमेरिका की सांस्कृतिक, एतिहासिक और राष्ट्रीय पहचान के रूप में शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' (Shakespeare, 2010) के एक प्रमुख चरित्र कालीबान के आधार पे स्थापित करते हैं। रेतामार ने यह निबंध खोसे एनरिके रोदो के "एरियल" के जवाब में लिखा था, रोदो अपने निबंध में टेम्पेस्ट के चरित्र

एरियल को लैटिन अमेरिकी सांस्कृतिक पहचान के रूप में इस्तेमाल करते हैं। मैनचेस्टर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर खोअओ सेसार दे रोचा (Joao Cesar Castro de Rocha) के अनुसार रेतामार बीसवी शताब्दी के प्रतिष्ठित लैटिन अमेरिकी बुद्धिजीवियों में से एक थे । उन्हें क्यूबा के राष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था।

कालीबान , शेक्सपियर के अंतिम नाटक "द टेम्पेस्ट" का मुख्य पात्र है, जो 1610 में लिखा गया था। यह कहानी एक दूरस्थ और सुनसान द्वीप पर घटित होती है, प्रोस्पेरो जो की मिलान का एक ड्यूक है अपनी पंद्रह साल की बेटी मिरांडा के साथ उस द्वीप पर एक नाव के सहारे पहुँचता हैं जब उसका भाई एंटोनियो उससे सब कुछ हथिया लेता हैं। द्वीप पर केवल कालीबान निवास करता है जो की एक विकृत और बर्बर प्राणी है जिसे प्रोस्पेरो अपना गुलाम बना लेता हैं । कालीबान की माँ साईकोरेक्स की मौत हो चुकी है; साईकोरेक्स ने एक पेड़ पर एरियल नाम की आत्मा को कैद कर लिया था। प्रोस्पेरो ने उसे अपने जादू से मुक्त कर दिया है और उसे अपनी सेवा करने के लिए की शपथ दिलाई हैं। नाटक के अधिकांश दृश्यों में कालीबान साहसिक और विद्रोही है जिसे प्रोस्पेरो अपने जादू से नियंत्रित करता है।

कालीबान का दावा है कि द्वीप उसका है जो प्रोस्पेरो द्वारा हड़प लिया गया है। कई विद्वानों और बुद्धिजीवियों ने कालीबान को साम्राज्यवादी उत्पीड़न के प्रतीक मूल लोगों का प्रतिनिधि माना है। रेटामार इन बौद्धिक स्थितियों से अवगत थे और उन्होंने शेक्सपियर की कहानी में लैटिन अमेरिकी पहचान के इतिहास को जोड़ा। रेटामार ने कैलीबन की विकृति, उसकी कुरूपता और उसकी क्रूरता को प्रोस्पेरो के औपनिवेशिक

एजेंडे की अवहेलना के रूप में दिखाया। रेटामार ने एनरिके रोडो की एरियल की प्रशंसा को एक गलती के रूप में दिखाया और इसके बजाय सुझाव दिया कि यह कैलिबैन ही है जो लैटिन अमेरिकी पहचान का प्रतिनिधित्व करता है। ऐतिहासिक भार के कारण, काल्पनिक पात्रों की भूमिकाएँ उलट जाती हैं।

पहले अध्याय में इस विषय पर विस्तृत चर्चा की जा चुकी है की कैसे उपनिवेशों ने अपने अधीन आने वाले लोगों की विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक, सामाजिक, ज्ञानमीमांसा, और एतिहासिक पहचानों को नष्ट किया। इस अध्याय में यहाँ ये चर्चा की जाएगी की कैसे उपनिवेशवादियों ने अपने अधीन जनसंख्या के शरीर को कमतर, कुरूप, घृणित, और तुच्छ घोषित किया। ऐसा करने के लिए ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया जो एक प्रकार की बाइनरी या युग्म में होते हैं जेसे अच्छा-बुरा, सभ्य-असभ्य, और उच्च-निम्न। केवल यही नहीं इन मूलनिवासियों को एलियन तक कहा गया। ऐसा करके उपनिवेशी ताकते इन मूलनिवासियों को प्रत्येक स्तर पर गुलाम बना लेना चाहती थी उन्होंने उनके शरीर पर तो कब्ज़ा कर ही लिया था लेकिन अब वो उनके मन मस्तिष्क पर भी कब्ज़ा करना चाहती थी ताकि ये लोग किसी भी दृष्टीकोण से अपने आप को उपनिवेशवादियों के मुकाबले बेहतर और श्रेष्ट महसूस न कर सकें।

उपनिवेशी ताकतों ने इन मूलनिवासियों को एक वस्तु के रूप में प्रयोग किया उन्हें अमानवीय, आदमख़ोर, वहशी, और बुद्धिहीन घोषित किया ताकि इन लोगों के प्रति किसी के मन में कोई दया भाव न उत्पन्न हो सके साथ ही साथ इन्हें हमेशा सभ्य मानव जीवन के लिए एक खतरे के रूप में प्रस्तुत किया गया। उपनिवेशी ताकतें इन

सभी कृत्यों को सही और उचित ठहराने के लिए रंगभेद की निति या रेसिज़्म जैसी संस्था का निर्माण किया। इस रेसिज़्म को विज्ञानिक और धार्मिक आधार भी दिया गया, उपनिवेशी ताकतें विभिन्न पुस्तकों और लेखों में इस बात के दावे किया करती थीं की काले लोग और अन्य गैर यूरोपीयाई जीवविज्ञानिक रूप से भी यूरोपीय लोगों से भिन्न हैं और प्रत्येक दृष्टीकोणों से यूरोपीय लोगों से निम्न हैं। इन सभी तर्कों का प्रयोग करके उपनिवेशी ताकतों ने इन मूलनिवासियों पर किये जा रहे शोषण, अत्याचार और तमाम अमानवीय घटनाओं को उचित और सही ठहराया ताकि इन लोगों को गुलामों और कामगारों के रूप में प्रयोग किया जा सके और उन्हें बाहरी देशों में बेचा जा सकें।

उपनिवेशी लोग चाहते थे कि उनका तंत्र किसी भी रूप और नज़रिए से गलत साबित न किया जा सके ताकि वो हर जगह प्रभुत्व स्ताथापित कर सकें इसलिए वे सब कुछ यूरोपीय दृष्टिकोण से बेहतर करना चाहते थे और इसमें सुंदरता भी शामिल है। सुंदरता और गोरेपन के बीच के संबंध को हिलाना कठिन साबित हुआ। बीसवी शताब्दी के मध्य तक सुन्दरता का पैमाना यूरोप और अमेरिका की पतली, गोरी, नीली आंखों वाली गोरी महिलाओं को माना जाता था परन्तु बाद में नियमों में बदलाव किया गया ताकि वे महिलाएं जो तीसरी दुनिया या गैर यूरो-अमेरिकी देशों से आती हैं ब्यूटी कांटेस्ट में भाग ले सकें। इससे पहले, आधिकारिक नियमों ने कहा था कि प्रतियोगियों को अच्छे स्वास्थ्य और सफेद/गोरी रेस का होना आवश्यक हैं।

द टेपेस्ट के कालीबान के माध्यम से जाना जा सकता है की कैसे उपनिवेशवादियों ने उपनिवेशित लोगों के शरीर की ऐसी व्याख्या की जिसके माध्यम से

उन्हें मनुष्य की सामान्य परिभाषा से बाहर रखा गया ताकि उनके ऊपर होने वाले शोषण और अत्याचार को उचित ठराया जा सके। जैसा की रेतामार कहते है की हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि "कालीबान" शब्द "कैन्निबल" से बना है जिसका प्रयोग शेक्सपियर हेनरी IV के तीसरे भाग में और ओथेलो में एंथ्रोपोफैगस के अर्थ में करता है जिसका मतलब होता है नरभक्षी अर्थात इंसानों का मांस खाने वाला। यह शब्द "कैरिब" शब्द से आता है, कैरिब इंडियंस उस जगह के सबसे ताकतवर और वीर निवासी थे जिन पर आज हमारा कब्ज़ा है। उनका नाम आज भी कैरिबियन सागर के रूप में जीवित है। क्रिस्टोफर कोलंबस ने अपने नेविगेशन लॉग बुक में अपने आगमन के विवरण में एक महाद्वीप का उल्लेख किया है जिसे वह अमेरिका कहता हैं। वह उन आदमियों के बारे में बताता है, जिन्होंने इंसानों को खाया। उसके दूसरे ब्योरों में उस महाद्वीप के एक हिस्सा का उल्लेख है जिसे आज हैती कहा जाता है जहां के लोग नरभक्षी कहलाते थे और उनकी एक ही आंख थी।

वह कैनरिया द्वीप के विवरण में बताता है जहाँ उसने अपनी खोज की घोषणा की, यहाँ के लोगों को बहुत ही क्रूर और मनुष्य का मांस खाने वाला बताया। (Retamar 36) रेतामर बताते हैं की कैसे *कैरिब* नाम को यूरोपीय लोगों ने अमानवीय और हिंसक के रूप में स्थापित किया। शेक्सपियर ने अपने लेखन के माध्यम से इसे महानगरो तक पहुँचाया और दुश्प्रचारित किया और इसके मूल अर्थ को तोड़ मरोड़ दिया। इस चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है की यह व्यवस्था उत्पीड़ितों के जिस्म और दिमाग़ का शोषण कर उन पर प्रभुत्व स्थापित करती है, और साथ ही साथ उनके शारीरिकी रंग

रूप पर अधिकार स्थापित करती हैं। यह प्रभुत्व अब निश्चित रूप से, केवल रेस।नस्ल तक ही सिमित नहीं है बल्कि अब ये और भी तमाम जगहों पर देखने को मिलता है जो इस दुनिया में हमारे होने, हमारे कार्यों और दुनिया के बारे में हमारी समझ को भी नियंत्रित/प्रभावित करता है अतः इस प्रभुत्व को ख़त्म करना अति आवश्यक हो जाता है।

रेतामार के निबंध के माध्यम से यह समझा जा सकता है की कैसे एक उपनिवेशित अपने आप को दुसरे उपनिवेशित के साथ जोड़ता है और यह दिखाने की कोशिश करता है की साहित्य में कैसे आज भी गुलाम और शोषक को देख सकते हैं। रेतामर से पहले भी बहुत लेखकों ने कालिबान को अपने अपने दृष्टीकोणों से उपनिवेशवाद के खिलाफ़ प्रयोग किया हैं। एमे सेस्सार ने “ए टेम्पेस्ट” को 1969 में उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण (पोस्ट-मोर्डेन) से इसे फ्रेंच भाषा में लिखा जिसमे कालीबन एक काला दास है और नाटक का मुख्य किरदार है।

सेस्सार कालीबान के माध्यम नस्लवाद, सत्ता, साम्राज्यवाद और वि-उपनिवेशवाद के मुद्दों पर विमर्श करते हैं (Cesaire, 2002)। फ्रांसीसी दार्शनिक अर्नेस्ट रेनन ने *Caliban: A Philosophical Drama Continuing “The Tempest” of William Shakespeare* 1878 (Renan, 2018) लिखा था। इसमें एरियल एक महिला के किरदार में हैं जो प्रॉस्पेरो के पीछे *मिलान* जाती है, और कैलीबन जो प्रोस्पेरो के खिलाफ तख्तापलट का नेतृत्व करते हैं। सफलता के बाद वह सक्रिय रूप से अपने पूर्व मास्टर की नकल करता है। रॉबर्टो फर्नांडीज रेतामार अर्नेस्ट रेनन से काफी प्रभावित हैं वो

कालीबान को एक "आम आदमी" (JOSEPH, 1992, p 5) के रूप में अवतरित करते हैं, लेकिन एक प्रतीक और लैटिन अमेरिकी पहचान के विमर्श पर रेतामार स्वयं भी बहुत कुछ नया जोड़ते हैं।

रेतामर अपने निबंध के माध्यम से लैटिन अमेरिकी दृष्टीकोण से उपनिवेश, सांस्कृतिक पहचान और नस्लवाद जैसे गंभीर मुद्दों पर चर्चा करते हैं । निबंध की शुरुआत होती है एक ऐसे सवाल से जो की लैटिन अमेरिका की सांस्कृतिक पहचान और अस्मिता से जुड़ा है। प्रश्न है “क्या लैटिन अमेरिकी संस्कृति/ सभ्यता हैं”? यह सवाल एक यूरोपीय पत्रकार पूछता है (Retamar,p5)। लैटिन अमेरिका सामाजिक, आर्थिक और एथनिक और प्राकृतिक विभिन्नताओं से भरा पड़ा है परिणाम स्वरुप लैटिन अमेरिकी पहचान असमान विशेषताओं के इस जटिल मिश्रण को दर्शाती हैं।

रेतामर लैटिन अमेरिका पहचान के रूप में साहित्य से एक नायक चुनते है, एक ऐसा नायक जो यूरोपकी सार्वभौमिक मान्यता “सभ्य ” का प्रतिरोधी तथा उपनिवेश का विरोधी है। सांस्कृतिक पहचान को स्थापित करने के सन्दर्भ में रेतामार अपने निबंध में ऐसे तमाम लेखकों की चर्चा करते हैं जिनके लेखन में लैटिन अमेरिकी सांस्कृतिक पहचान के सन्दर्भ में अत्यंत प्रमाणित स्रोत उपलब्ध हैं। इन लेखकों के कार्यों के माध्यम से एक सांस्कृतिक पहचान,उपनिवेशी वर्चस्व का विरोध तथा एक वैकल्पिक मुक्ति के मार्ग पर विमर्श करते हैं। निबंध में कालीबान को लैटिन अमेरिका की सांस्कृतिक पहचान का एक प्रतिबिम्ब/प्रतिरूप तथा विदेशी वर्चस्व के विरोधी के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

रेतामार कालिबान के माध्यम से वह इस बात की पुष्टि करना चाहता है, कि लैटिन अमेरिका भी एक संस्कृति है, जिसे सम्मानपूर्वक मान्यता दी जानी चाहिए । वो पहले के हिस्पैनिक लेखकों की प्रवृत्ति का विरोध करते हैं क्यूंकि उन लेखकों ने काले और मूलनिवासी लोगों की उपेक्षा की जबकि यही काले लोग और मूलनिवासी लैटिन अमेरिका को परिभाषित करते हैं।(Bentley 2010, p 22)। रेतामार का कालीबन एक ऐसा नायक है जो तथाकथि यूरोपीय सभ्यता के पैमाने के बहार हैं। रेतामार लैटिन अमेरिकी संस्कृति की प्रकृति, इसकी जड़ें, इसकी ऐतिहासिक दुविधाओं के साथ साथ लैटिन अमेरिकी लोगों के उत्पीड़न और आधीनता के खिलाफ संघर्ष पर भी चर्चा करते हैं। संक्षेप में यह कह सकते हैं की लैटिन अमेरिकी कौन हैं? और उसकी संस्कृति क्या है? के सवाल का उत्तर तलाश रहें है और नए वैचारिक ढांचों के निर्माण एक रास्ता बना रहें हैं।

इस बात का आंकलन करना अति आवश्यक है की लैटिन अमेरिकी दृष्टिकोण से एरियल, कालीबान और प्रोस्पेरो क्या दर्शाते हैं। द टेम्पेस्ट का प्रोस्पेरो यूरोप की उस सभ्यता का प्रतीक है जिसके पास भाषा ,ज्ञान और विज्ञान है जिसके माध्यम से वो अपने उपनिवेश का विस्तार चाहता है जबकि कालीबान की अपनी कोई भाषा नहीं है वो भाषा रहित है उसके पास जो भाषा है उसे वो गुलाम बनाने वाले प्रोस्पेरो ने सिखाई है जिसके माध्यम से वो अपना विरोध प्रकट करते हैं . कालीबान प्रोस्पेरो की ही भाषा में उसके अन्याय और शोषण की निंदा करता है कालीबान कहता है की तुमने मेरे द्वीप पर आक्रमण किया और मुझे गुलाम बनाया अपनी भाषा सिखाई ताकि में तुम्हे समझ सकूं

(Retamar 2006 p 9) रेतामार का कालीबन लैटिन अमेरिकी जनता का एक स्वरुप है जो शोषित और पीड़ित है परन्तु उसके मन में स्वतंत्रता की असीम इच्छा है जिसे वो प्राप्त करना चाहता है अतः वो एक विद्रोही है जो अपनी मुक्ति के लिए लड़ता है अतः वो एक ऐसे डिस्कोर्स को पैदा करते हैं जो यूरोपीय सभ्यता और परम्परा का विरोधी है।

“This island’s mine, by Sycorax my mother Which thou takest from me। When thou camest first” (1, 2,331-332)।

रेतामार कालीबान में आदिवासी अमेरिकी, ग़ुलाम अफ्रीकी, ग़रीब मेस्टिज़ो क्रेओल, अपमानित, अपनी ज़मीनों से वंचित लोगों , और वो सभी लोगों को शामिल करते है जो अपने अन्याय के ख़िलाफ़ विद्रोह करते हैं। एरियल भी कालीबान की तरह ही एक गुलाम है परन्तु दोनों में अंतर है एरियल एक आज्ञाकारी आत्मा है जो भले ही अनिच्छा से, स्वामी की आज्ञाओं का पालन करता है और अपनी स्वतंत्रता के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करता है। उसमे विरोध नहीं है प्रोस्पेरो का व्यहार भी दोनों ही गुलामों के लिए अलग अलग है।

रेतामार कालीबान में लैटिन अमेरिका की उपनिवेश और शोषण विरोधी संस्कृति को देखते है वो बताते है की *तुपाक अमारू* से लेकर *साल्वाडोर आयेंदे* तक के इतिहास में प्रतिरोध के व्यापक स्वर नज़र आते हैं। वो लैटिन अमेरिका में घटित हुई उन तमाम एतिहासिक घटनाओ का वर्णन करते हैं जो वर्चस्व के विरुद्ध थी। वो घटनाये थी यूरोपियों के विरुद्ध काले लोगों का विद्रोह *तुपाक अमारू* का पेरू में विद्रोह, हैती का विद्रोह, *मेक्सिको* की क्रांति निकारगुआ में *सान्डीनो* का विद्रोह और अंत में राष्ट्रपति

साल्वाडोर आयेंदे का चिली में विद्रोह इत्यादि। वो कहते हैं “हमारी संस्कृति और केवल हमारी संस्कृति सदियों पुरानी उपनिवेशवाद की अस्वीकृति की क्रांति की संतान हो सकती है (Retamar, 2006,p 73) वह बताते है की ये वर्चस्व और उपनिवेशवाद का प्रतिरोध हमारी संस्कृति का एक हिस्सा है. इसी संस्कृति का कालीबान प्रतीक है जो जोसे रोदो के एरियल की तरह अपने उपनिवेशक का नौकर नहीं है बल्कि स्वतन्त्रता चाहने वाला एक योद्धा है एक बौधिक भी है।

रेतामार कहते हैं की लैटिन अमेरिका में आंशिक रूप से एथ्निक से विभिन्नता है लेकिन सांस्कृतिक रूप से विभिन्नता नहीं है। यहाँ पर अफ़्रीकी , इंडियन्स, और यूरोपीय समुदाय के वंशजों के रूप में, हमारे पास केवल कुछ ही भाषाएँ हैं जिनके माध्यम से हम एक दूसरे को समझते है परन्तु वो भाषाएँ भी उपनिवेशवादियों की ही हैं। दुसरे उपनिवेश या पूर्व उपनिवेशों के महानगरों में लोग अपनी ही भाषा में बाते करते है जबकि हम अपने उपनिवेशवादियों की भाषा (स्पेनिश)का प्रयोग करते हैं।

इस सन्दर्भ में स्पेनिश एक ‘लिंगुआ फ्रांका’ या एक सार्वजानिक भाषा है जिसकी सीमाएं क्रेओल भाषा और देसज भाषाओं की तुलना में कहीं अधिक विशाल और विस्तृत है। ये भाषा अब हमारी भी भाषा है और उनके कई वैचारिक उपकरण भी हैं जो अब हमारे “वैचारिक उपकरण” भी हैं (Retamar,p 5) इसी विलक्षण असाधारणता को रेतामर कालीबान में देखते हैं। कालीबान के साथ भाषा लैटिन अमेरिका और वहाँ के निवासियों की पहचान का एक मत्वपूर्ण पहलु है जैसा की कालीबान प्रोस्पेरो और मिरांडा के बीच के संवाद से पता चलता हैं।

You taught me language, and my profit on 't

Is I know how to curse। The red plague rid you

For learning me your language! (I.ii. 366–368)

कालिबान के इन शब्दों से पता चलता है की वो प्रोसेपेरों द्वारा सिखयी गयी भाषा और शिक्षा के प्रति उसमे कोई आभार नहीं है बल्कि क्रोध है कालीबान प्रोस्पेरो से कहता कहता है आपने शिक्षा दी परन्तु इसके बदले में मेरी स्वतंत्रता मुझसे छीन ली जो की एक बर्बर कृत्य है परन्तु आप की भाषा का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है लेकिन आप की भाषा के माध्यम से में आप को बता सकता हूँ की में आप से कितनी घृणा करता हूँ।

रेतामार उपनिवेशवाद के विचार का उपयोग करते हैं कि कैसे कालीबान अपनी स्वदेशी पहचान का खुलासा करता है और इस बात पर जोर देता हैं कि वह गोरें लोगों द्वारा उत्पीड़न के अधीन हैं, उसका क्या इतिहास है। कालीबान उन मूलनिवासियों और आदिवासियों के लिए एक प्रतीक है, जिनको उनकी भूमि और संस्कृति से बेदखल कर दिया जाता है। प्रोस्पेरो का चरित्र एक यूरोपीय उपनिवेशी का है जो भूमि को हड़प लेता हैं, और कालीबान को यूरोपीय संस्कृति में परिवर्तित करता हैं। कालीबान जो एक गुलाम देश और संस्कृति का प्रतिनिधि है वह अपनी मुक्ति का माध्यम अपने मालिक की सिखाई हुयी भाषा को बनाता है।

कुछ लोगों का यह मत हो सकता है की उपनिवेशवादी की ही भाषा मातृ भाषा क्यों नहीं। उपनिवेशवादी उपनिवेशित की मात्र भाषा से परिचित नहीं है , एसे में यदि कालिबान अपनी बात अपनी भाषा में प्रोस्पेरो से कहत तो उसका सन्देश उस तक नहीं

पहुँचता और वो एक मजाक का पत्र भी बनता। अतः उपनिवेशवादी की निंदा आलोचना करने के लिए उसी की भाषा सबसे उपयुक्त है क्यूंकि इस प्रकार वक्ता के पास काफी अवसर होंगे सही और सटीक सन्देश को पहुँचाने के लिए (Sarwoto,2004,p 50)।

रेतामार गूंगे और उपेक्षित" जनसामान्य "लोगों को एक भाषा के रूप एक बहुआयामी आवाज़ देना चाहते है ,भाषा जो उनकी ताकत बन सकती है उपनिवेशवाद के खिलाफ जो उन्हें उपनिवेशवादियों से विरासत में मिली है. वह इसे संभव बनाने के लिए एक "universidad americana" नामके प्रोजेक्ट की सलाह देते है. इसके लिए वो चे ग्वेरा के शिक्षा पर दिए एक भाषण का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिसमे चे की ये इक्षा है की ऐसे विश्वविदालय लोगों को समर्पित कर देना चाहिए (Retamar, 83)।

रेतामार बताते हैं की लैटिन अमेरिका में सामान्य लोग और कुलीन वर्ग के बीच एक सामाजिक विभाजन है जिसका परिणाम यह होगा की यूरोपीय आदर्श केवल यूरोपीय राज्यों की की एक बुरी कॉपी उत्पादन करेंगे। इस प्रकार लैटिन अमेरिका और कुछ नहीं बल्कि यूरोप का एक गरीब चचेरा भाई या एक प्रकार का रिश्तेदार ही लगेगा ऐसे में रेतामार बताते हैं की लैटिन अमेरिका के पास खुद को परिभाषित करने के लिए उपनिवेशवादियों की भाषा के अलावा कोई विकल्प नहीं हैं। यहाँ यह स्पष्ट होता है की रेतामार का उद्देश्य यह है की जो समाज वंचित, उपेक्षित और हाशिए पर है उसे उस भाषा की ताकत दी जा सकती है जो कभी उपनिवेशवादियों की थी। इस भाषा का प्रयोग वो खुद को सुनने ,सुनाने और कहने के लिए कर सकते हैं। एक समय में लैटिन अमेरिकन लोगों की खुद की भाषा को "हीन" और लोगों को बाकी समाज से "बहिष्कृत"

किया गया ऐसे में अब उपनिवेशवादियों की भाषा के माध्यम से लैटिन अमेरिकी लोग अपने ही देश के उच्च वर्ग के बीच पहुँच सकते हैं। उपनिवेशवाद की भाषा के माध्यम से यूरोकेंद्रित और अमेरिकी आक्रमणों को रोका जा सकता हैं।

निकोलास क्रिस्तोबाल गिय्येन : काली चमड़ी का गौरव गान

निकोलास क्रिस्तोबाल गिय्येन बातिस्ता का जन्म 10 जुलाई 1902 को क्यूबा के कामागुये नामक शहर में हुआ था उनकी मृत्यु 16 जुलाई 1989 में क्यूबा में हुई। निकोलास गिय्येन एक कवि होने के साथ-साथ एक जाने-माने पत्रकार और राजनीतिक कार्यकर्ता थे। निकोलास लैटिन अमेरिका में ब्लैक पोएट्री के प्रतिनिधि माने जाते हैं। गिय्येन ने 1920 के दशक में काले लोगों द्वारा अनुभव की जाने वाली सामाजिक समस्याओं के बारे में लिखना शुरू किया।

उनकी पहली कविताएँ कामागुए ग्राफिको में 1922 में छपीं। 1930 में, उन्होंने *मोतीवोस दे सोन* के प्रकाशन के साथ एक अंतर्राष्ट्रीय हलचल पैदा की, जिसमें आठ लघु कविताएँ थीं। ये कविताएँ लोकप्रिय अफ्रो-क्यूबन संगीत *सोन* से प्रेरित थीं, जिसमें वो अफ्रो-क्यूबन लोगों के दैनिक जीवन की स्थितियों को व्यक्त करते हैं। ये कविताएँ अफ्रो-क्यूबन स्थानीय भाषा में लिखी गई थीं। अपनी कविताओं के चलते निकोलस को जेल भी जाना पड़ा तथा कई वर्षों तक इन्होंने निष्कासन का दंश भी झेला परंतु क्यूबा की क्रांति के बाद ये क्यूबा वापस आ गए और फिर बहुत-सी कविताएँ प्रकाशित कीं। अगले दो दशकों के दौरान, उन्होंने तेंगो (1964), *एल ग्रान जू* (1967), *ला रुएदा देंतादा* (1972)

और *एल दियारियो के आ दियारियो* (1972), *सोल दे दोमिंगो* (1982) सहित कई कविता संग्रह लिखे और प्रकाशित किए।

गिय्येन ने अपनी जन्मभूमि के उथल-पुथल वाले इतिहास को एक मार्क्सवादी दृष्टिकोण से वर्णित किया, जिसे उन्होंने साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और नस्लवाद के अन्याय के रूप में माना। नेग्रितुद के प्रतिनिधित्व का एजेंडा क्यूबा के तानाशाह गेरार्डो मचाडो शासन और बाद में बतिस्ता शासन का परिणाम है। गिय्येन अमेरिका के साम्राज्यवादी एजेंडे को बहुत मजबूती से सामने लाते हैं और इसलिए उनकी कविता भी बहुत अमेरिकी विरोधी है। उनका नेग्रिट्यूड एक अलग प्रकार के नस्लवाद को व्यक्त करता है जहां अमेरिकी, उनकी मोनोकल्चर और उनकी अज्ञानता उजागर हो जाती है और उन्हें तौहीन की जाती है। निकोलस गिलन अमेरिकी लोगों का उपहास करके, उनकी अक्षमता और उनकी अमानवीयता को उजागर करके ऐसा करते हैं।

यह एक प्रकार का उल्टा नस्लवाद है जिसमे वह इस बात पर बहस करते है कि नेग्रीतुद कैसे बहुत शक्तिशाली और सकारात्मक नैरटिव है। इनका मानना था कि एक काले कलाकार को शर्म किए बगैर अपनी काली चमड़ी का बयान खुद अभिव्यक्त करना चाहिए। वह अपने प्रसिद्ध और विवादास्पद *मोटिवोस डी सोन* (1930) से शुरुआत करते हुए, काले क्यूबा (या एफ्रो-क्यूबन) के अनुभव की पुष्टि और जश्न मनाने वाले पहले लेखकों में से एक थे।

नेग्रीतुद एक सांस्कृतिक आंदोलन था, जो 1930 के दशक में फ्रांस तथा फ्रांसीसी उपनिवेशों और कैरेबियाई क्षेत्रों के काले छात्रों द्वारा पेरिस में शुरू किया गया था। इन

काले बुद्धिजीवियों ने अपनी साझी काली पहचान और अफ्रीकी विरासत में अपने सम्मान को मजबूती देने और अफ्रीकी आत्मनिर्णय, आत्म-निर्भरता और आत्म-सम्मान को पुनः प्राप्त करने के लिए कविताएँ और कहानियाँ लिखीं। नेग्रीतुद आंदोलन ने अफ्रीका और अफ्रीकी डायस्पोरा में काले लोगों के बीच नस्ल चेतना के जागरण का संकेत दिया। इस नई नस्ल चेतना ने पश्चिमी प्रभुत्व, काली जनता विरोधी नस्लवाद, दासता और काले लोगों के ऊपर उपनिवेशवादी शासन की सामूहिक निंदा की। इसने काले लोगों से जुड़े मिथकों और रूढ़िवादिता को दूर करने की कोशिश की, उनकी संस्कृति, इतिहास और उपलब्धियों को स्वीकार करने के साथ-साथ दुनिया में उनके योगदान को पुनः प्राप्त करने और वैश्विक समुदाय के भीतर उनके सही स्थान को बहाल करने की मांग की।

यह ध्यान रखना दिलचस्प हो सकता है कि दलित आंदोलनों को अमेरिकी काले आंदोलनों के प्रभाव है, दलित लेखन में फ्रेंच नेग्रिट्यूड साहित्य के प्रभाव पर ऐसा कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है, सिवाय फ्रैंकोफोन साहित्य में। दलित पैंथर आंदोलन के उदय को पहले ही अध्याय 2 में संबोधित किया जा चुका है। निकोलस गिय्येन पर शोध हालांकि भारत में लगभग न के बराबर है। फिर भी हममें से जिन्होंने दलित साहित्य पढ़ा है, उनके लिए पहचान के मुद्दे, क्रोनी कैपिटलिज्म और सामाजिक भेदभाव बहुत तुलनीय लगते हैं। हालांकि इस संबंध में विवाद का मुद्दा यह है कि गिलन का अमेरिका विरोधीवाद भी राष्ट्रीय क्यूबा का एजेंडा बन गया, जबकि दलित कथाएं अभी भी वास्तविक रूप से बाहर से बोली जाती हैं जो खतरनाक और टकराव वाली लगती हैं।

इसलिए, भले ही हमने गिलेन को उन लेखकों में शामिल किया है जो नस्ल को स्पष्ट करते हैं। इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि वह बहुत अलग तरीके से महत्वपूर्ण हैं। उनकी कविता में नस्ल क्यूबा की राष्ट्रीय पहचान के अभिन्न अंग है।

खोसे मारिया अर्गेदास इंडियनस के स्वदेशी आंदोलनों की एक साहित्यिक आवाज

खोसे मारिया अर्गुएदास लैटिन अमेरिका में मानवजाति का अध्ययन करने वाले और *नस्ल* तथा *मेस्तिसाखे* के सबसे महत्वपूर्ण बुद्धिजीवी माने जाते हैं । वह *इन्दिखेनिस्मो* आन्दोलन के एक बहुत ही मत्वपूर्ण लेखक भी माने जाते हैं । *इन्दिखेनिस्मो* एक साहित्यिक, कलात्मक और राजनीतिक आंदोलन जिसने स्वदेशी विरासत को सम्मानित किया और स्वदेशी लोगों को राष्ट्रीय जीवन में आत्मसात करने पर ध्यान केंद्रित किया। विशेष रूप से स्वदेशी रेडियन संस्कृति के अपने अंतरंग चित्रण के लिए पहचाना जाता है। स्वदेशी अभिव्यक्ति और परिप्रेक्ष्य को अधिक प्रामाणिक रूप से चित्रित करने की उनकी इच्छा में एक नई भाषा का निर्माण था जो स्पेनिश और क्वेशुआ को मिश्रित करता था और उनके पहले उपन्यास *यावार फिएस्ता* में प्रीमियर हुआ था।

ऐसा कहा जाता है की उनकी परवरिश इंडियन और मूल अमेरिकी लोगों का बड़ा प्रभाव रहा क्यूनी की उनके जन्म के समय ही उनकी माँ चल बसी जिसके बाद उनकी सोतेली माँ और घर के नौकरों ने उन्हें पला । जिसका परिणाम यह हुआ की उन्होंने खुद को एक इंडियन के नज़रिए से सोचना और समझना आरम्भ किया। वह अपने साहित्य और साक्षात्कारों में बबर बार अपनी मात्रभाषा क्वेशुआ को मानते हैं जिसे

अपनी मातृभाषा के रूप में सीखते और बोलते हुए बड़ा हुआ। अर्गेदास ने इस नस्लीय, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्वाकांक्षा को एक अनोखे तरीके से मूर्त रूप दिया, जिसने उनके कई समकालीनों को प्रभावित और भयभीत किया। उनका साहित्य इस बात की गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है कि यह नस्लीय शोषण पश्चिमी एंडियन राष्ट्र-राज्यों के मूलभूत केंद्र में था और जिसने पहचान के मुद्दे को इतने व्यापक पैमाने पर पोषित किया किया की भारतीय। इंडियन पहचान को आधिकारिक रूप से कभी मिटने नहीं दिया। लेखक उनके उपन्यास का विश्लेषण करते हैं और जिस तरह से इसने शासन की एक पुरानी सामंती व्यवस्था की वैचारिक संरचनाओं को चुनौती दी है

अर्गेदास के साहित्यिक कार्यों का विश्लेखन करने पर यह स्पष्ट होता है की वह अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने राजनितिक विचारों को प्रसारित करते हैं । अर्गेदास पेरू के स्वदेशी इंडियन के साथ खुद को जोड़ते हैं, वह उनके मुद्दों को लेकर अपने साहित्य में काफी मुखर और उग्र भी नज़र आतें हैं । उनकी सभी रचनाएं पेरू के समाज में उपस्थित तनावों को दर्शाती हैं, जिसमें इंडियनस, जो कि बहुसंख्यक आबादी का गठन करते हैं, अभी भी समाज के हाशिये पर पड़े हुए हैं।

उनकी रचना *अगुआ* (1935; "पानी ") जो कि तीन कहानियों का एक संग्रह,में श्वेत लोगों के इंडियन लोगों पर हो रहे हिंसक अन्याय और अव्यवस्था को दर्शाया है, जबकि इंडियनस को एक शोषित, निष्क्रिय परन्तु शांतिपूर्ण और व्यवस्थित रूप से रहने वाला दिखाया है। *यावार फिएस्ता* (1941; "खूनी पर्व") इस उपन्यास के केंद्र में दो वर्गों के बीच की आर्थिक असामनता है। भारतीयों और गोरों के सामाजिक संघर्ष के प्रतीक

एक प्राचीन बुलफाइट के अनुष्ठान का विस्तार से वर्णन किया गया है। अर्गेदास की सबसे उत्कृष्ट कृति *लोस रियोस प्रोफुनदास* (1958; गहरी नदी) उपन्यास है, जो एक आत्मकथात्मक कार्य है अर्थात इसमें अर्गेदास के पहले के जीवन की झलक को भी देखा जा सकता है। उनका उपन्यास एल सेक्स्तो (1961; "द सिक्स्थ वन") ऑस्कर बेनावाइड्स की तानाशाही के दौरान उनके कारावास (1937-38) पर आधारित है।

उपन्यास *टोडास लास संग्रेस* ("ऑल द रेस/ब्लड") 1964 में प्रकाशित हुआ। जैसा की पुस्तक के शीर्षक से ही पता चलता है कि, यह उपन्यास पेरू के सभी नस्लों, संस्कृतियों, क्षेत्रो के साथ-साथ पेरू की राष्ट्रीय विविधता के बारे में है। यह उपन्यास बड़ी-बड़ी अंतरराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से साम्राज्यवादी घुसपैठ तथा और इन्डिजनस लोगों के आधुनिकीकरण के खतरे का मुद्दें को रेखांकित करती है। और इसके बाद एक अधूरा उपन्यास, एल ज़ोरो दे अरिबा इ एल ज़ोरो दे अबाखो (1971; द फॉक्स फ्रॉम अप एबव एंड द फॉक्स फ्रॉम डाउन बॉटम) आया। इसमें अर्गेदास अपने अंतिम दिन की ओर जाने वाली घटनाओं पर व्यवस्थित और उत्साह से चर्चा करता है, जब उसने लीमा में एक सुनसान कक्षा में आत्महत्या कर ली थी।

एंडीज में नस्ल और संस्कृति के अध्ययन में अर्गेदास के कार्यों के उल्लेखनीय योगदान के लिए अत्यधिक मान्यता दी जा रही है। अर्गेदास के लेखों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इन्डिजनस लोगों पर पश्चिमी दृष्टिकोण को थोपे जाने की निरंतर परिक्रिया ने अर्गेदास को पूरे जीवन परेशान किया। एंडियन क्षेत्र पर उनसे बेहतरीन काम उनके समय तक किसी ने नहीं किया था। अर्गुएदास ने अपने लेखों में नस्लीय, सामाजिक और

सांस्कृतिक महत्त्वाकांक्षा को एक अनोखे तरीके से मूर्त रूप दिया, जिसने उनके कई समकालीनों को प्रभावित और भयभीत भी किया। पेरू में एक छुपी ही नस्लीय सच्चाई को बहार लाने के लिए अर्गेदास प्रतिबद्धता और भावनात्मक दायित्व, स्पष्ट नज़र आता है। जिस उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ़ अधिकांश एंडियनवादी भी चुप थे, उसके बारे में अर्गेदास ने खुल कर बोला और लिखा। अर्गेदास के लेख इंडियन समुदायों की कठोर ऐतिहासिक विरासतों को नष्ट करने, प्रताड़ित करने और व्यवस्थित तरीके से अपमानित करने का जीता जागता प्रमाण-पत्र है। अर्गेदास के लेख पश्चिमी एंडियन राज्यों में व्याप्त नस्लीय शोषण की गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते है। इंडियन परम्पराओं को मिटाने की आधिकारिक प्रयासों के खिलाफ उठती आवाजों तथा नस्लीय आतंक को उनके लेख बख़ूबी चिह्नित करते हैं।

अर्गेदास के साहित्यिक अलंकार को उनके समकालीन दृष्टिकोण से भाषा और पैतृक संस्कृति के मिश्रण से परिभाषित किया गया है, जहाँ लेखक की विरासत निरंतर संघर्ष में है। अर्गेदास एक द्विभाषी मिश्रित नस्ल का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अपने लोगों के लिए आवाज की तलाश में, स्पैनिश और केचुआ को अनदेखा किए बिना एक साहित्यिक भाषा बनाता है, आविष्कार करता है और निर्माण करता है और एक सपने में "सभी रक्त "*तोदास लॉस सांग्रेस* अर्थात सभी नस्ल के लिए एक ऐसी मिश्रित दुनिया की कामना करता है जो वास्तविक बन जाये।

REFERENCES:

Arguedas, Jose Maria. *Yawar Fiesta*. Translated by Frances H. Barraclough, University of Texas Press, 1985.

Arnedo-Gomez, Miguel. *Uniting Blacks in a Raceless Nation: Blackness, Afro-Cuban Culture, and Mestizaje in the Prose and Poetry of Nicolas Guillen*. Bucknell University Press, 2019.

Aronowitz, Stanley. “Paulo Freire’s Radical Democratic Humanism: The Fetish of Method.” *Counterpoints*, vol. 422, 2012, pp. 257–74.

“बाबा साहेब भीम राव आंबेडकर.” *आरोह कक्षा 12 की हिंदी पाठ्यपुस्तक*, NCERT, 2007.

Baro, Dionisio Poey. “‘Race’ and Anti-Racism in Jose Marti’s ‘Mi Raza.’” *Contributions in Black Studies A Journal of African and Afro-American Studies*, vol. 12, no. Article 6, 1994.

Becker, Marc. “Mariátegui, the Comintern, and the Indigenous Question in Latin America.” *Science and Society* 70.4 (2006): 450–479. *Science and Society*. Web.

Bentley, George Frederico Oliveira. “LATIN AMERICAN IDENTITY IN THE TEMPEST: ARIEL OR CALIBAN.” *Revista de Pós-Graduação Em Letras UNESP – Campus de Assis* , vol. 7, 2010.

Cajero Vázquez, Antonio. “El Héroe Sin Rostro. Los Personajes de Yawar Fiesta.” *Revista de El Colegio de San Luis* 2 (2014): 124. *Revista de El Colegio de San Luis*. Web.

Cesaire, Aime. *A Tempest*. Translated by Richard Miller, Theatre Communications Group, 2002.

Cortez, Enrique E. “José María Arguedas, Etnógrafo: Campo Cultural y Mestizaje.” *Letras (Lima)* 87.125 (2016): 69–92. *Letras (Lima)*. Web.

“Cuban Cultural Leader Makes Rare Visit to England.” The University of Manchester, 26 May 2009, https://www.manchester.ac.uk/discover/news/cuban-cultural-leader-makes-rare-visit-to-england/.

Fernandez Retamar, Roberto. “Caliban: Notes Toward a Discussion of Culture in Our America.” *The Latin American Cultural Studies Reader*. Duke University Press, 2020. 83–99. *The Latin American Cultural Studies Reader*. Web.

Fountain, Anne. *José Martí, the United States, and Race*. University Press of Florida, 2014.

Freire, Paulo. *Pedagogy of the Oppressed*. Translated by Myra Bergman Ramos, Sheed & Ward, 1972.

Gupta, Sonya Surabhi, editor. *Subalternities in India and Latin America: Dalit Autobiographies and the Testimonio*. Routledge, 2021.

Haré, Cecilia. “Arguedas y El Mestizaje de La Lengua: Yawar Fiesta.” *Lexis* 25.1–2 (2001): 475–487. Print.

Joseph, Margaret Paul. *Caliban in Exile-The Outsider in Caribbean Fiction*. Greenwood Press, 1992.

Kim, Hun-Ki. “A Fraction of Tricontinentalism— Mariátegui and the Race Problem in Latin America.” *The Historical Journal* 72 (2020): 431–452. *The Historical Journal*. Web.

Lander, Edgardo. *La Colonialidad Del Saber: Eurocentrismo y Ciencias Sociales: Perspectivas Latinoamericanas*. Consejo Latinoamericano de Ciencias Sociales (Clacso), 2004.

Mariátegui, José Carlos. “The Land Problem (1928).” *José Carlos Mariátegui An Anthology*, edited by Harry E. VANDEN and MARC BECKER, Monthly Review Press, 2011.

Mariátegui, José Carlos. “The Problem of Race: Approaching the Issue.” *Key Texts for Latin American Sociology*. SAGE Publications Ltd, 2020. 186–200. *Key Texts for Latin American Sociology*. Web.

Maritegui, Jos Carlos. *Siete Ensayos de Interpretacin de La Realidad Peruana*. Linkgua Ediciones, 2008.

Martí, José. “Mi Raza.” *Patria*, 16 Apr. 1893, https://www.academia.edu/36324849/_Mi_raza_Jos%C3%A9_Mart%C3%AD.

Martí, José. *Obras - Colección de José Martí Biblioteca de Grandes Escritores*. 2015.

Montero, Oscar. “Against Race.” *José Martí: An Introduction*, New Directions in Latino American Cultures, Palgrave Macmillan, New York, 2004, pp. 59–84.

Mosquera, Carlos Cruz. “Jose Carlos Mariategui: Welding Marxism and Indigenism in Latin America Today.” *Journal of Labor and Society* 21.1 (2018): 5–17. *Journal of Labor and Society*. Web.

Phule, Jyotirao Govindrao. *Gulamgiri*. Createspace Independent Publishing Platform, 2017.

Renan, Ernest. *Caliban: A Philosophical Drama Continuing the Tempest of William Shakespeare (Classic Reprint) (Paperback)*. Forgotten Books, 2018.

Retamar, Roberto Fernández. “Caliban (1971).” *Pensamiento Anticolonial de Nuestra América*. CLACSO, 2020. 139–208. *Pensamiento anticolonial de nuestra América*. Web.

Retamar, Roberto Fernández. “III.2.7 Caliban: A Question.” *Resisting Categories: Latin American and/or Latino?*. Yale University Press, 2022. 509–513. *Resisting Categories: Latin American and/or Latino?*. Web.

Sarwoto, Paulus. *The Figuration of Caliban in the Constellation of Postcolonial Theory*. Louisiana State University, 2004.

Shakespeare, William. *The Tempest*. MVB E-Books, 2010.

Sirohi, Rahul A., and Sonya Surabhi Gupta. “The Political Economy of Race and Caste: Revisiting the Writings of Mariátegui and Ambedkar †.” *Journal of Labor and Society* 23.3 (2020): 399–413. *Journal of Labor and Society*. Web.

Smith, Linda Tuhiwai. *Decolonizing Methodologies: Research and Indigenous Peoples*. Edited by Linda Tuhiwai Smith, 2nd ed., Otago University Press, 2012.

Suárez Pomar, Magdalena. “Traducción, Mestizaje y Transculturación En Tres Textos de José María Arguedas.” *Latinoamérica. Revista de Estudios Latinoamericanos* 74 (2022): 161. *Latinoamérica. Revista de Estudios Latinoamericanos*. Web.

Vanden, Harry E., and Marc Becker, editors. *Jose Carlos Mariategui: An Anthology*. Monthly Review Press, 2012.

मीणा,मीनाक्षी. “आंबेडकर : हाशियाकृत समाज के शिक्षाशास्त्री.” *Forwardpress*, Oct. 2017, https://www.forwardpress.in/2017/10/ambedkars-thoughts-on-education-an-overview-hindi/.

CAPÍTULO 4: UN MATERIAL DIDÁCTICO SOBRE LA RAZA EN LA LITERATURA LATINOAMERICANA DEL SIGLO XX.

Este capítulo se centrará en la estructura social y la literatura del país latinoamericano. Aunque la literatura y los libros sobre el tema están disponibles en abundancia, se siente la necesidad de un libro conciso, que en forma de libro de texto proporcione información detallada sobre el tema. El objetivo de esta lección es proporcionar un concepto fundamental sobre la raza y el tema se explica de manera elegante mediante la preparación de un cuestionario sobre textos literarios para que los estudiantes puedan desarrollar una mejor perspectiva para comprender la estructura mental racista en la historia humana.

Raza, una categoría mental de la modernidad: Aníbal Quijano

La idea de raza, en su sentido moderno, no tiene historia conocida antes de América. Quizás se originó como referencia a las diferencias fenotípicas entre conquistadores y conquistados, pero lo que importa es que muy pronto fue construida como referencia a supuestas estructuras biológicas diferenciales entre esos grupos.

La formación de relaciones sociales fundadas en dicha idea, produjo en América identidades sociales históricamente nuevas: indios, negros y mestizos y redefinió otras. Así términos como español y portugués, más tarde europeo, que hasta entonces indicaban solamente procedencia geográfica o país de origen, desde entonces cobraron también, en referencia a las nuevas identidades, una connotación racial. Y en la medida en que las relaciones sociales que estaban configurándose eran relaciones de dominación, tales identidades fueron asociadas a las jerarquías, lugares y roles sociales correspondientes, como constitutivas de ellas y, en consecuencia, al patrón de dominación colonial que se imponía. En otros términos, raza e identidad racial fueron establecidas como instrumentos de clasificación social básica de la población.

Con el tiempo, los colonizadores codificaron como color los rasgos fenotípicos de los colonizados y lo asumieron como la característica

emblemática de la categoría racial. Esa codificación fue inicialmente establecida, probablemente, en el área britano-americana. Los negros eran allí no solamente los explotados más importantes, pues la parte principal de la economía reposaba en su trabajo. Eran, sobre todo, la raza colonizada más importante, ya que los indios no formaban parte de esa sociedad colonial. En consecuencia, los dominantes se llamaron a sí mismos blancos.

En América, la idea de raza fue un modo de otorgar legitimidad a las relaciones de dominación impuestas por la conquista. La posterior constitución de Europa como nueva id-entidad después de América y la expansión del colonialismo europeo sobre el resto del mundo, llevaron a la elaboración de la perspectiva eurocéntrica de conocimiento y con ella a la elaboración teórica de la idea de raza como naturalización de esas relaciones coloniales de dominación entre europeos y no europeos. Históricamente, eso significó una nueva manera de legitimar las ya antiguas ideas y prácticas de relaciones de superioridad/inferioridad entre dominados y dominantes. Desde entonces ha demostrado ser el más eficaz y perdurable instrumento de dominación social universal, pues de él pasó a depender inclusive otro igualmente universal, pero más antiguo, el inter-sexual o de género: los pueblos conquistados y dominados fueron situados en una posición natural de inferioridad y, en consecuencia, también sus rasgos fenotípicos, así como sus

descubrimientos mentales y culturales. De ese modo, raza se convirtió en el primer criterio fundamental para la distribución de la población mundial en los rangos, lugares y roles en la estructura de poder de la nueva sociedad. En otros términos, en el modo básico de clasificación social universal de la población mundial. (Quijano,2000,p 204)

EJERCICIO UNO

Elija verdadero o falso de las opciones en base del texto.

1. **Aníbal Quijano inventó la teoría de la colonialidad del poder.**

A. Verdadero

B. Falso

2. **La raza no es biológica es una categoría mental.**

A. Verdadero

B. Falso

3. **La idea de raza fue creada durante la colonización de américa por los europeos.**

A. Verdadero

B. Falso

4. **Aníbal Quijano es un sociólogo peruano.**

A. Verdadero

B. falso

5. **La raza fue categorizada inicialmente en base a Fenotípicas**.

A. verdadero

B. falso

EJERCICIO DOS

Dar la respuesta adecuada de acuerdo a su comprensión del texto.

1. ¿Por qué la raza y la identidad racial se establecieron durante la colonización europea en América Latina?
2. ¿Cuál es tu primer recuerdo de tomar conciencia del racismo?
3. ¿Qué piensas cuando escuchas el término supremacía blanca?
4. ¿Es la discriminación basada en castas en la India diferente de la discriminación racial en América Latina? Evaluar.

EJERCICIO TRES

Haga coincidir las siguientes columnas y seleccione la opción correcta.

	COLUMNA - I		COLUMNA – II
A	**Fenotípicas**	**I**	**Organizar leyes o reglas en un código sistemático.**
B	**Codificación**	**II**	**Exhibir las cualidades o características que identifican a un grupo o especie o categoría.**
C	**Característica Emblemática**	**III**	**Reflejando una tendencia a interpretar el mundo en términos de valores y experiencias europeas o angloamericanas.**
D	**Perspectiva Eurocéntrica**	**IV**	**Características físicas, bioquímicas y del comportamiento que se pueden observar**

A	**A – IV, B – I, C – II, D – III**
B	**A – I, B – II, C – III, D – IV**
C	**A – II, B – IV, C – III, D – I**
D	**A – II, B – III, C – IV, D – I**

EJERCICIO CUATRO

Elegir la respuesta correcta de la opción dada.

1. **Los latinos e hispanos se clasifican en……..**

A. Raza

B. Etnia

C. Grupo Dominante

D. Grupo Segregado

2. **El trato injusto de grupos de personas se denomina _____.**

A. Discriminación

B. Prejuicio

C. Racismo

D. Desigualdad

3. La creencia de que la cultura propia es superior a la de los demás se llama _____.

A. Etnocentrismo

B. Egocentrismo

C. Relativismo cultural

D. Xenocentrismo

4. La creencia en la superioridad de uno o más grupos raciales que crea y mantiene una jerarquía racial se llama _____.

A. Racismo

B. fascismo

C. Nacionalismo

D. Prejuicio

5. La gente solía creer que la raza de una persona se basaba en _____, pero ahora se reconoce como una construcción social.

A. Lugar de nacimiento

B. color de cabello y ojos

C. Patrimonio Cultural

D. Diferencias Genéticas

MI RAZA: JOSE MARTI

Esa de racista está siendo una palabra confusa y hay que ponerla en claro. E1 hombre no tiene ningún derecho especial porque pertenezca a una raza o a otra: dígase hombre, y ya se dicen todos los derechos. El negro, por negro, no es inferior ni superior a ningún otro hombre; peca por redundante el blanco que dice: "Mi raza"; peca por redundante el negro que dice: "Mi raza". Todo lo que divide a los hombres, todo lo que especifica, aparta o acorrala es un pecado contra la humanidad. ¿A qué blanco sensato le ocurre envanecerse de ser blanco, y qué piensan los negros del blanco que se envanece de serlo y cree que tiene derechos especiales por serlo? ¿Qué han de pensar los blancos del negro que se envanece de su color? Insistir en las divisiones de raza, en las diferencias de raza, de un pueblo naturalmente dividido, es dificultar la ventura pública y la individual, que están en el mayor acercamiento de los factores que han de vivir en común. Si se dice que en el negro no hay culpa aborigen ni virus que lo inhabilite para desenvolver toda su alma de hombre, se dice la verdad, y ha de decirse y demostrarse, porque la injusticia de este mundo es mucha, y es mucha la ignorancia que pasa por sabiduría, y aún hay quien crea de buena fe al negro incapaz de la inteligencia y corazón del blanco; y si a esa defensa de la naturaleza se la llama racismo, no importa que se la llame así, porque no es más que decoro natural y voz que clama del pecho del hombre

por la paz y la vida del país. Si se aleja de la condición de esclavitud, no acusa inferioridad la raza esclava, puesto que los galos blancos, de ojos azules y cabellos de oro, se vendieron como siervos, con la argolla al cuello, en los mercados de Roma; eso es racismo bueno, porque es pura justicia y ayuda a quitar prejuicios al blanco ignorante. Pero ahí acaba el racismo justo, que es el derecho del negro a mantener y a probar que su color no le priva de ninguna de las capacidades y derechos de la especie humana.

El racista blanco, que le cree a su raza derechos superiores, ¿qué derechos tiene para quejarse del racista negro que también le vea especialidad a su raza? El racista negro, que ve en la raza un carácter especial, ¿qué derecho tiene para quejarse del racista blanco? El hombre blanco que, por razón de su raza, se cree superior al hombre negro, admite la idea de la raza y autoriza y provoca al racista negro. El hombre negro que proclama su raza, cuando lo que acaso proclama únicamente en esta forma errónea es la identidad espiritual de todas las razas, autoriza y provoca al racista blanco. La paz pide los derechos comunes de la naturaleza; los derechos diferenciales, contrarios a la naturaleza, son enemigos de la paz. El blanco que se aísla, aísla al negro. El negro que se aísla, provoca a aislarse al blanco. (Marti, mi raza,)

EJERCICIO UNO

Haga coincidir las siguientes columnas y seleccione la opción correcta.

	COLUMNA - I		**COLUMNA - II**
A	*Aborigen*	I.	*Parecido o semejanza de una persona o cosa con otra.*
B	*Servidumbre*	II.	*Que es originario del territorio en que vive.*
C	*Mulato*	III.	*Conjunto de criados que sirven a la vez en una casa.*
D	*Afinidad*	IV.	*Hijo de negros y blancos.*

A	**A – IV, B – I, C – II, D – III**
B	**A – I, B – II, C – III, D – IV**
C	**A – II, B – IV, C – III, D – I**
D	**A – II, B – III, C – IV, D – I**

EJERCICIO DOS

Elija verdadero o falso de las opciones en base del texto.

1. José Martí es un racista.
    a. Verdadero
    b. Falso
2. Según José Martí no hay raza.
    a. Verdadero
    b. Falso
3. Según José Martí todos los humanos son iguales.
    a. Verdadero
    b. Falso
4. Una persona negra también puede ser racista.
    a. Verdadero
    b. Falso
5. Este texto trata sobre la raza y la igualdad.
    a. Verdadero
    b. Falso

EJERCICIO TRES

Dé la respuesta apropiada en una línea o dos líneas

1. ¿Cuál es la definición de "Hombre" según Martí?
2. ¿Cuál es el tema principal del ensayo "Mi raza" de José Martí?
3. ¿Por qué los hombres no tienen derechos especiales simplemente porque pertenecen a una raza u otra?
4. Qué tipo de preocupación levanta José mari en este ensayo?
5. ¿Por qué se cree que los negros no son capaces de la misma inteligencia y coraje que los blancos?

NEGRO BEMBÓN: NICOLÁS GUILLÉN

¿Po qué te pone tan brabo,
cuando te disen negro
bembón,
si tiene la boca santa,
negro bembón?
Bembón así como ere
tiene de to;
Caridá te mantiene,
te lo da to.
Te queja todabía,

negro bembón;
sin pega y con harina,
negro bembón,
majagua de dri blanco,
negro bembón;
sapato de do tono,
negro bembón...
Bembón así como ere,
tiene de to;
Caridá te mantiene,
te lo dá to. (Guillén, 1997)

EJERCICIO UNO

Elija verdadero o falso de las opciones en base del texto.

1. Guillén escribió Motivos de son en 1930.

   A. Falso

   B. Verdadero

2. El tema del poema es nacionalidad cubana

   A. Falso

   B. Verdadero

3. El poeta habla de la igualdad racial en Cuba.

   A. Falso

   B. Verdadero

4. Según el poeta Negro debe estar orgulloso de su color.

   A. Falso

   B. Verdadero

5. Este poema es una fusión de la música afro-cubana.

   A. Falso

   B. Verdadero

EJERCICIO DOS

Dé la respuesta apropiada en una línea o dos líneas

1. ¿Qué lleva puesto el personaje de este poema?

2. ¿Cuál es el tono del hablante en este poema?

3. Cuál es el significado de este poema?

4. ¿Qué crees que intenta transmitir Guillén en este poema?

5. ¿Cuál es tu primer recuerdo de darte cuenta de que algunas personas se ven diferentes a ti?

6. ¿Cómo se reflejan la raza y el racismo en el poema negro bombón?

EJERCICIO TRES

Haga coincidir las siguientes columnas y seleccione la opción correcta.

	Columna I.		Columna II.
A.	Pega	I.	Es un árbol de cuya madera, fuerte y correosa.
B.	Majagua	II.	Es una expresión popular que implica que todo lo que pide se le concede.
C.	Bemba	III.	Es sinónimo popular de trabajo.
D.	Boca santa	IV.	Labio grueso

A	A – IV, B – I, C – II, D – III
B	A – III, B – I, C – IV, D – II
C	A – II, B – IV, C – III, D – I
D	A – II, B – III, C – IV, D – I

Levantó los brazos para taparse la cara. Los otros vecinos salieron de la tienda, disimulando. En la calle, la gente corría hacia la puerta de don Pancho. Llegaron dos guardias civiles, se abrieron campo y entraron a la tienda.

—¡Lleven este cholo a la cárcel! —ordenó el subprefecto.

Cuando los guardias estuvieron arrastrando a don Pancho, ya en la puerta de la tienda, don Demetrio le dio un puntapié en la nalga. El subprefecto gritó desde la puerta:

—¡Y despejen, guanacos! ¡Fuera!

Toda la gente corrió, calle arriba y calle abajo.

—¡Cholos estúpidos! ¡Salvajes!

—¡Sí, señor! Son unos brutos.

—¡Unos salvajes!

—¡Vergüenza de Puquio!

Don Antenor Miranda, don Jorge de la Torre, don Jesús Gutiérrez… hablaron rápido; ellos también sacaban el pecho, como el subprefecto, y miraban asqueando a la

gente que hormigueaba en la calle y salía en tropel del jirón Bolívar a las otras calles.

A don Pancho lo llevaron del brazo, los dos guardias. Los cholos y

algunos vecinos lo miraban asustados, como preguntando.

—¡Por defender a Puquio voy preso!

—¡Cállese! —le gritaban los guardias.

Y lo empujaron al patio del cuartel. En el patio se soleaban los «cuatreros» indios, los cholos acusados de asesinato, de violación, de faltamiento a la autoridad. Todos se pararon viendo entrar a un misti preso.

—¡Carajo! ¡Me enredaré en las tripas de ese adulete! ¡Algún día!

Por el jirón despejado ya, el subprefecto y los vecinos notables volvieron a la plaza. Por las cuatro esquinas llegaban indios, vecinos y algunos chalos, pero veían al subprefecto frente al cuartel, y se regresaban,

como si estuvieran perseguidos. Otros se paraban un rato en el filo de la esquina, miraban la subprefectura, y se ocultaban.

—¡Estos pueblos son una porquería! Con razón nos ganaron los chilenos. Aguaitan como guanacos —dijo el subprefecto.

—¡Sí, señor! La cobardía de los indios se mete en la sangre de uno.

—¡Verdad, señor subprefecto! Bien hicieron los yankis en exterminar a los pielrojas.

En ese momento, el juez y dos escribanos salieron del Juzgado; vieron a los vecinos reunidos en el parquecito, frente al cuartel, y se dirigieron al grupo. (Arguedas, 1985)

EJERCICIO UNO

Elegir la respuesta correcta de la opción dada.

1. ¿Quién es el autor de la obra "Yawar fiesta"?

   A. Ciro Alegría

   B. Abraham Valdelomar

   C. José María Arguedas

   D. César Vallejo

2. ¿Cuál es el mensaje de la obra?

   A. Debe haber justicia

   B. Seguridad en los participantes

   C. Buen espectáculo

   D. Abuso de autoridad

3. ¿Qué significa Yawar Fiesta?

   A. Plaza de toros

   B. Animal salvaje

   C. Fiesta sangrienta

   D. El toro y el cóndor

4. ¿Qué pasaba cuando el indio reclamaba?

   A. . Lo acusaban de ladrón y cuatrero

   B. . Lo sacrificaban en las fiestas

   C. . Eran apedreados

   D. . Le quitaban todo

5. ¿Quién se enfrentó al Subprefecto?

   A. . Don Julián

   B. . Don Pancho Jiménez

   C. . Don Demetrio

   D. . El Vicario

6. ¿Don Julián apoyaba la corrida a la usanza india por qué?

   A. . Respetaba las tradiciones del pueblo

   B. . Porque temía a los ayllus

   C. . Le convenía su ignorancia

   D. . Veneraba a los aukis

7. A pesar de la prohibición, ¿qué pasó en los pueblos?

   A. . Estaban tristes

   B. . Los Wakawak'ras cantaban

   C. . Se prepararon para la fiestas

   D. . Aceptaron la prohibición

EJERCICIO DOS

Elija verdadero o falso de las opciones en base del texto.

1. Yawar Fiesta describe las relaciones sociales entre indios, mestizos y blancos en el pueblo de Puquio, en la sierra peruana, a principios del siglo XX.
    A. Verdadero
    B. Falso
2. En Yawar fiesta, Arguedas nos da una perspectiva crítica de los mistis y de su conducta hacia los indios.
    A. Verdadero
    B. Falso
3. Cholo (nombre despectivo de un indígena aculturado de la sierra peruana.
    A. Verdadero
    B. Falso
4. El subprefecto quiere prohibir la práctica por considerarla bárbara.
    A. Verdadero
    B. Falso

5. Los cholos quieren continuar con la fiesta del yawar porque representa una importante muestra de fuerza (masculina) para el pueblo que los somete.

    A. Verdadero

    B. Falso

EJERCICIO TRES

Dé la respuesta apropiada en una línea o dos líneas

1. ¿Por qué lleva ese título? ¿Cuál es el tema central de la lectura?
2. ¿Qué reflexión nos proporciona el texto literario?
3. ¿Por qué el subprefecto trata a las personas como salvajes y no como humanos?
4. ¿Cuál es su herencia étnica y religiosa? ¿Tienes una historia sobre alguien en tu familia que se opuso a la injusticia?
5. ¿De qué manera se reproduce la desigualdad de generación en generación?

PARA LA HISTORIA DE CALIBAN: ROBERTO FERNÁNDEZ RETAMAR

Caliban es anagrama forjado por Shakespeare a partir de “caníbal” –expresión que, en el sentido de antropófago, ya había empleado en otras obras como La tercera parte del rey Enrique VI y Otelo–, y este término, a su vez, proviene de “caribe”. Los caribes, antes de la llegada de los europeos, a quienes hicieron una resistencia heroica, eran los más valientes, los más batalladores habitantes de las tierras que ahora ocupamos nosotros. Su nombre es perpetuado por el Mar Caribe (al que algunos llaman simpáticamente el Mediterráneo americano; algo así como si nosotros llamáramos al Mediterráneo el Caribe europeo). Pero ese nombre, en sí mismo –caribe–, y en su deformación caníbal, ha quedado perpetuado, a los ojos de los europeos, sobre todo de manera infamante. Es este término, este sentido, el que recoge y elabora Shakespeare en su complejo símbolo. Por la importancia excepcional que tiene para nosotros, vale la pena trazar sumariamente su historia.

En el Diario de navegación de Cristóbal Colón aparecen las primeras menciones europeas de los hombres que darían material para aquel símbolo. El domingo 4 de noviembre de 1492, a menos de un mes de haber llegado Colón al continente que sería llamado América, aparece esta anotación: “Entendió también que lejos de allí había hombres de un ojo, y otros con hocicos de perros que comían a los hombres”;3 el viernes

23 de noviembre, esta otra: “la cual decían que era muy grande [la isla de Haití: Colón la llamaba por error Bohío], y que había en ella gente que tenía un ojo en la frente, y otros que se llamaban caníbales, a quienes mostraban tener gran miedo”. El martes 11 de diciembre se explica “que caniba no es otra cosa que la gente del gran Can”, lo que da razón de la deformación que sufre el nombre caribe –también usado por Colón: en la propia carta “fecha en la carabela, sobre la Isla de Canaria”, el 15 de febrero de 1493, en que Colón anuncia al mundo su “descubrimiento”, escribe: “así que monstruos no he hallado, ni noticia, salvo de una isla [de Quarives], la segunda a la entrada de las Indias, que es poblada de una gente que tienen en todas las islas por muy feroces, los cuales comen carne humana”…. (Retamar, 2005)

EJERCICIO UNO

Elija verdadero o falso de las opciones en base del texto.

Calibán es un monstruo.

A. Verdadero

B. Falso

Según Retamar Calibán es un anagrama forjado por Shakespeare.

A. Verdadero

B. Falso

Caliban lucha por la verdadera libertad.

A. Verdadero

B. Falso

Retamar se refiere a Calibán es una metáfora de caníbal.

A. Verdadero

B. Falso

Los indígenas americanos eran bárbaros.

A. Verdadero

B. Falso

Colón civilizó a la población indígena de América.

A. Verdadero

B. Falso

EJERCICIO DOS

Haga coincidir las siguientes columnas y seleccione la opción correcta.

	Columna I.		*Columna II.*
A	*Calibán*	*i.*	*Algo encontrado o aprendido por primera vez*
B	*William Shakespeare*	*ii.*	*Fue un explorador y navegante italiano el primer europeo que contactó con América*
C	*Cristóbal Colón*	*iii.*	*Es un personaje de La Tempestad*
D	*Descubrimiento*	*iv.*	*Es el dramaturgo más influyente en la historia del idioma inglés.*

A	*A – IV, B – I, C – II, D – III*
B	*A – III, B – IV, C – II, D – I*
C	*A – II, B – IV, C – III, D – I*
D	*A – II, B – III, C – IV, D – I*

EJERCICIO TRES

Dé la respuesta apropiada en una línea o dos líneas

1. Explique ¿Cuál es la opinión de Roberto Fernández Retamar sobre Calibán?
2. ¿Qué representa Calibán en La Tempestad?
3. ¿Por qué Calibán es importante en América Latina?
4. ¿Cuál es el significado de Calibán?
5. ¿Por qué Shakespeare usó el nombre de Calibán?

.

AL FINAL DEL CAPITULO

1. ¿Te consideras un racista?

R. Sí

B No

C. Tal vez

2. ¿Tienes una primera impresión de una persona por su color o raza?

R. Sí

B. A veces

C No

3. ¿Hay alguna carrera en particular que no te guste?

R. Sí

B No

4. ¿Haces observaciones/comentarios raciales?

R. Sí

B. A veces

C. En broma

D. Raramente

E.No

5. ¿Tienes amigos que pertenecen a una raza diferente?

R. Sí

B No

C. Bueno, hay algunos. Son más como mis compañeros.

6. ¿Cuál es tu opinión sobre las relaciones interraciales?

R. Es normal.

B. Es diferente.

C. Es raro.

D. Está mal.

E. Eso es genial.

7. ¿Cuál es tu primera reacción al ver a una mujer caucásica con un niño afroamericano?

A. "¡Aww, él/ella es tan lindo!"

B. "Bien por ellos".

C. "Es probable que ese niño sea adoptado".

D. "¡Es tan basura!"

8. ¿Se niega a involucrarse en festivales o encuentros culturales de otras personas?

R. Sí

B. A veces...

C. Depende de la cultura.

D. Rara vez...

9. ¿Cómo reaccionarías si ves un acto de racismo?

R. No digo nada.

B. Tomaré medidas en su contra.

C. A cada uno lo suyo.

REFERENCES:

Alzugaray, Pilar, et al. Preparacion DELE: Libro + audio descargable - B2. Edelsa Grupo Didascalia, 2019.

Arguedas, José María. “CIRCULAR.” *Yawar Fiesta*, University of Texas Press, 1985.

Aula internacional nueva edición 5 (B2.2): Libro del alumno + MP3-CD + Premium. Klett Sprachen, 2018.

Chávez, Kerry, and Kristina M.W. Mitchell. “Exploring Bias in Student Evaluations: Gender, Race, and Ethnicity.” *PS - Political Science and Politics* 53.2 (2020): 270–274. *PS - Political Science and Politics*. Web.

Constance-Huggins, Monique. “Intersection of Race, Gender, and Nationality in Teaching about Race and Racism.” *Reflective Practice* 19.1 (2018): 81–88. *Reflective Practice*. Web.

Guillen, Nicolas, Langston Hughes, and Ben Frederic Carruthers. “Negro Bembon/Thick-Lipped Cullud Boy.” *Callaloo* 31 (1987): 172. *Callaloo*. Web.

Guillén, Nicolás. “NEGRO BEMBÓN.” *Sóngoro Cosongo,Colección Antares*, Libresa, 1997.

Harbin, M.B., Amie Thurber, and Joe Bandy. “Teaching Race, Racism, and Racial Justice: Pedagogical Principles and Classroom Strategies for Course Instructors.” *Race and Pedagogy Journal* 4.1 (2019): 285–299. Print.

Kapur, Radhika. *Development of Teaching-Learning Materials*. N.p., 2019. Print.

Kishimoto, Kyoko. “Anti-Racist Pedagogy: From Faculty’s Self-Reflection to Organizing within and beyond the Classroom.” *Race Ethnicity and Education* 21.4 (2018): 540–554. *Race Ethnicity and Education*. Web.

Martell, Christopher C., and Kaylene M. Stevens. “Equity- and Tolerance-Oriented Teachers: Approaches to Teaching Race in the Social Studies Classroom.” *Theory and Research in Social Education* 45.4 (2017): 489–516. *Theory and Research in Social Education*. Web.

Martí, José. “Mi Raza.” *Patria*, 16 Apr. 1893, https://www.academia.edu/36324849/_Mi_raza_Jos%C3%A9_Mart%C3%A

Quijano, Anibal. “Colonialidad Del Poder, Eurocentrismo y América Latina.” *La Colonialidad Del Saber. Eurocentrismo y Ciencias Sociales. Perspectivas Latinoamericanas*, edited by Edgardo Lander, CLACSO, Consejo Latinoamericano de Ciencias Sociales., 2000, p. 204.

Quintana, Leonor, and Rosa Maria Perez. *Preparacion DELE: Libro + audio descargable - C1 (2019 edition)*. Edelsa Grupo Didascalia, 2019.

Retamar, Roberto Fernández. “CALIBAN.” *TODO CALIBAN*, edited by Marta Rojas, The Instituto Latinoamericano de Servicios Alternativos, 2005, pp. 36–38.

Schutte, Ofelia. “Undoing ‘Race’: Martí’s Historical Predicament.” *Forging People: Race, Ethnicity, and Nationality in Hispanic American and Latino/a Thought*. University of Notre Dame Press, 2011. 99–123. Print.

Thomas, Ebony Elizabeth. "'We Always Talk about Race': Navigating Race Talk Dilemmas in the Teaching of Literature." *Research in the Teaching of English* 1 Nov. 2015: 154–175. Print.

Tomlinson, Brian. "Materials Development for Language Learning and Teaching." *Language Teaching* Apr. 2012: 143–179. *Language Teaching*. Web.

Tsai, Jennifer et al. "Addressing Racial Bias in Wards." *Advances in Medical Education and Practice* 9 (2018): 691–696. *Advances in Medical Education and Practice*. Web.

Von Esch, Kerry Soo, Suhanthie Motha, and Ryuko Kubota. "Race and Language Teaching." *Language Teaching* 1 Oct. 2020: 391–421. *Language Teaching*. Web.

निष्कर्ष

यह शोध बीसवीं शताब्दी के लैटिन अमेरिकी साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथों में नस्ल के मुद्दों को उजागर करने वाली शिक्षण सामग्री को विकसित करने की आवश्यकता के बारे में है। यह शिक्षण सामग्री भारत की सामाजिक विभिन्नताओं जैसे धार्मिक, जातीय, नस्लीय एवम एथनिक को ध्यान में रखकर तेयार किया गया है । भारतीय विश्वविदालयों में विदेशी साहित्य के रूप में लैटिन अमेरिकी साहित्य को पढाये और पढ़े जाने को लेकर शिक्षाविदों एवं शिक्षार्थियों दोनों की चुनौती को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। इसी चुनौती को ध्यान में रखते हुए इस शोध में बीसवी शताब्दी के लेखकों के उन लेखों पर जो नस्ल के मुद्दों पर आधारित हैं उन पर एक विस्तृत बहस की गयी है। शिक्षण सामग्री का चयन लैटिन अमेरिका के समाज शास्त्री आनिबाल खिखानो की थ्योरी कोलोनियलटी ऑफ़ पॉवर, वाल्टर मिन्योलो का एपिस्टेमिक डिसओबेयडीएनस तथा एनरिके दुस्सेल का कल्चरल डिसओबेयडीएनस को मद्दे नज़र रखकर लिया गया है ।

आधुनिकतावादी युग, उपनिवेशवाद के युग के दौरान उभरी शक्ति, नियंत्रण और आधिपत्य की संरचनाओं का नाम देने के लिए आनिबाल किखानो ने 'कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर' शब्द को गढ़ा जो अमेरिका की विजय से लेकर वर्तमान तक फैली हुई है। किखानो ने इसे पश्चिमी यूरोपीय सोच के तरीके को सार्वभौमिक मानने की प्रांतीय प्रवृत्ति को ख़त्म

करने का एक साधन के रूप में गढ़ा और प्रचारित किया। 'कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर' ज्ञान की एक यूरोकेन्द्रित प्रणाली पर आधारित है, जिसमें नस्ल को " यूरोपीय और गैर-यूरोपीय लोगों के बीच औपनिवेशिक सम्बंधों के प्राकृतिककरण के रूप में देखा जाता है। ज्ञान की यूरोकेंद्रिक प्रणाली ने यूरोपीय लोगों को ज्ञान का उत्पादन सौंपा और ज्ञान के यूरोपीय तरीकों के उपयोग को प्राथमिकता दी। वाल्टर मिन्योलो आनिबाल किखानो की बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि 'आधुनिकता' को मोक्ष की लफ्फाजी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन यह उपनिवेशवाद को छुपाता है, जो उत्पीड़न और शोषण का तर्क है।

आधुनिकता, पूंजीवाद और उपनिवेशवाद अर्थव्यवस्था और अधिकार, लिंग और ज्ञान और व्यक्तिपरकता के नियंत्रण के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दुसरे शब्दों में कहें तो (आधुनिकता और उपनिवेशवाद) अविभाज्य हैं। एनरिके दुसेल कहते हैं कि यदि हम वास्तव में शिक्षा में परिवर्तन चाहते हैं, तो हमें "सांस्कृतिक उपनिवेशवाद" की अवधारणा पर विचार करना चाहिए। इस संदर्भ में औपनिवेशीकरण का अर्थ है कि हम एक विदेशी संस्कृति का उपनिवेश नहीं रह गए हैं। "सांस्कृतिक उपनिवेशवाद" की समाप्ति के लिए एनरिके सांस्कृतिक विऔपनिवेशीकरण / 'देस्कोलोनियालीदाद कुल्तुराल' वास्तविक मुक्ति की आवश्यकता से उत्पन्न होता है, इसका प्रयोग उन जंजीरें को तोड़ने के लिए किया जाना चाहिए जिन्होंने हमें अपने इतिहास को पहचानने नहीं दिया, जिन्होंने नयी संभावनाएँ बनाने की अनुमति नहीं दी, जहाँ शोषित एक उपसंस्कृति बनना बंद कर सकते

हैं, अपने सांस्कृतिक मूल्य की खोज कर सकते हैं और इसका बचाव कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए शोषितों को स्वयं का मूल्यांकन करके शुरुआत करनी चाहिए (डसेल, 2012ए, पृष्ठ.117) ।

'कोलोनियाल्टी ऑफ़ पॉवर' अपने विस्तार में वैश्विक है क्योंकि उपनिवेशीकरण से पहले, हर स्वदेशी राष्ट्र उपनिवेशवादी भोगोलिक सीमाओं के बिना अस्तित्व में था और दुनिया के हर महाद्वीप में स्वदेशी लोग हैं जो अपनी पहचान अपना ज्ञान खो चुके हैं। इसी सन्दर्भ में 'एपिस्टेमोलॉजिकल डिकोलोनाईजेसन' एक महत्त्वपूर्ण ढांचा हैं जो आत्मनिर्णय और मुक्ति के समर्थन के माध्यम से मानवाधिकारों और समानता को बढ़ावा देते हैं। उपनिवेशवादी पद्धतियाँ उपनिवेशित लोगों की खोई हुई पहचान को पुनः प्राप्त करने में मदद करती हैं। इस थीसिस के पहले अध्याय में इन्हीं तीन व्यक्तियों की थ्योरी पर बहस करते हुए इस दिशा में बढ़ने का प्रयास किया गया है कि नस्ल आधारित शिक्षण सामग्री की आवशयकता क्यों हैं ।

कोलोनिअलित्य ऑफ़ पॉवर के विभिन्न स्वरूपों जैसे एपिस्टेमिक दिसोबेदिएन्के को केंद्र में रखते हुए तथा यूरोकेंद्रिता का खंडन करते हुए चुने हुए लेखों के न्याय संगत चयन के समर्थन में तर्क दिए गए है । यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कैसे उपनिवेशवादियों ने साम्राज्यवाद विस्तार के दौरान मूल निवासियों से उनके ज्ञान की परम्पराओं, भाषाओँ और संस्कृतियों को या तो नष्ट किया या फिर उन्हें अन्य या घटिया की संज्ञा दी। वर्तमान समय में किस प्रकार अश्वेत जन इस ढांचे को उखाड़ फेकने का

संघर्ष कर रहें हैं । इस प्रकिरिया में अश्वेत यूरोकेंद्रित ज्ञान के स्थान पर अपने ख़ुद के ज्ञान और परम्पराओं को दुबारा स्थापित करने का संघर्ष कर रहें हैं ।

दुसरे अध्याय में लैटिन अमेरिका में साम्राज्यवाद के समय से लेकर वर्तमान समय तक कोलोनिअलित्य ऑफ़ पॉवर के लैटिन अमेरिकी समाज पर पड़ने वाले आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर बहस की आवशयकता पर बल दिया गया है। भारत तथा लैटिन अमेरिकी समाज में व्याप्त सामाजिक गैर बराबरी तथा सामाजिक शोषण पर एक तुलनात्मक पर चर्चा की गयी है । इस तुलनात्मक चर्चा में नस्लवाद तथा जातिवाद के किसी समाज में पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डाला गया है ।

यह दिखाने की कोशिश की गई है कि किस प्रकार नस्लवादी और जातिवादी तत्वों का सामाजिक कंस्ट्रक्शन किया जाता है, तथा इस पर आधारित हिंसा का सामान्यीकरण भी कर दिया जाता है। इस प्रकार एक ऐसे समाज का निर्माण हो जाता है जिसमे शक्तिशाली वर्ग ज्ञान की संस्थाओं जैसे स्कूल और विश्वविद्यालय तथा आर्थिक संसाधनों मुख्य रूप से उत्पादन पर अपना दावा ठोक देते हैं। इस वर्चस्व को बनाये रखने के लिए यह शक्तिशाली वर्ग अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित सदियों पुराने ज्ञान का महिमा मंडन करते हैं। इस ज्ञान को ध्वस्त करने के लिए शोषितों और पीड़ितों को अपने आप को शोषकों के ज्ञान से न केवल ख़ुद को अलग करने की आवश्यकता है बल्कि अपनी मुक्ति के लिए नए ज्ञान के निर्माण की भी आवश्यकता है।

मुक्ति के मार्ग को ध्यान में रखते हुए भेदभाव, हिंसा आदि के आधार पर नस्ल और जाति की संभावित तुलना की गयी है। साहित्य शोषितों एवम वंचितों की मुक्ति का मार्ग बन सकता है बशर्ते वह वंचितों के दृष्टिकोण से होना चाहिए न कि शोषकों के. इसी सिलसिले में नस्ल आधारित शिक्षण सामग्री की न्यायोचित प्राथमिकता पर चर्चा की गयी है । यह सैद्धांतिक तर्कों के लिए अत्यधिक मौलिक है जो इस बात का औचित्य सिद्ध करता है कि हमें कुछ बुनियादी स्तर के स्पेनिश पाठ्यक्रमों के लिए नस्ल आधारित पाठ्य पुस्तक क्यों रखनी चाहिए।

अध्याय तीन में बीसवीं शताब्दी के प्रमुख चिंतको जैसे खोसे कार्लोस मारियातेगी, रोबेर्तो फेर्नान्देस रेतामार, निकोलास गियेन, खोसे मारिया अर्गेदास इत्यादि के नस्ल सम्बन्धी विचारों, कथनों एवम लेखों पर विस्तृत चर्चा की गयी है। थीसिस में खोसे मारती भी शामिल है क्योंकि नस्लवाद पर उनका निबंध नस्लवाद पर किसी भी प्रवचन में बहुत मौलिक है। इन सभी के लेखकों के मुख्यरूप से उन लेखों को शामिल किया गया है जो 'ज्ञानमीमांसात्मक उलंघन' का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। जैसे कि खोसे मारती के प्रसिद्ध लेख 'मी रासा' में व्यक्त किये गए मारती के विचारों को प्रस्तुत किया गया है । मारती नस्लवाद का पुरजोर खंडन करते हैं और इसे राष्ट्रवाद के लिए एक गंभीर चुनौती मानते हैं। मारती बहु सांस्कृतिक एकता की बात करते हुए कहते हैं कि क्यूबा में नस्लवाद जैसी कोई समस्या नहीं है।

खोसे कार्लोस मारियातेगी के अनुसार पेरू में असामनता का मुख्य कारण सामाजिक अर्थात नस्लवाद न होकर आर्थिक हैं। मारियातेगी कहते हैं कि पेरू में जो इंडियनस के साथ होने वाले भेदभाव और अत्याचार के लिए 'लातिफुन्दो' व्यवस्था ज़िम्मेदार हैं। रोबेर्तो फेर्नान्देस रेतामार 'कालीबान' को लैटिन अमेरिकी पहचान और संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करते। कालीबान के मध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि कैसे गैर-श्वेत पहचान पर प्रासंगिक उद्धरण पढ़ सकते हैं। निकोलास गियेन को एफ्रो-क्यूबन लोगों और संस्कृति के चैंपियन के रूप में देखा जाता है। गियेन क्यूबा में काले और सफ़ेद लोगों की एकता की प्रबल इक्षा अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं ।गियेन अपनी मुलातो पहचान के प्रबल समर्थक होने के साथ-साथ वह काले लोगों को अपनी शारीरिक बनावट और रूप रंग पर अभिमान करने का भी आह्वाहन करते हैं ।

खोसे मारिया अर्गेदास को सांस्कृतिक नायक कहा जा सकता हैं, अपने लेखों में वह सांस्कृतिक विविधता का जश्न मनाने की पुरजोर वकालत करते हैं। वह मेस्तिसो की अवधारण को विकसित करने के साथ ही इंडियनस की सांस्कृतिक विरासत के घनघोर समर्थक के रूप में नज़र आते हैं। अर्गुएदास केचुआ भाषा के माध्यम से स्वदेशी मूल्यों एवम परम्पराओं के साथ सम्पर्क बनाये रखते हैं । उपर्युक्त लेखकों के लेख मूलनिवासियों, शोषितों एवम अश्वेत जनों को संघर्ष का एक स्वर देते हैं जो उन्हें शोषण से मुक्ति दिलाने में एक अहम् भूमिका अदा कर सकते हैं।

अध्याय चार में लेखकों की उन कृतियों के उद्धरणों को शामिल किया गया है जो अश्वेत शोषितों के स्वरों के सबसे उपयुक्त उदहारण प्रस्तुत करते हैं। इन लेखकों के कार्यों से उद्धरणों का चयन कर एक ऐसा अध्याय तैयार किया गया है किया गया हैं जो विद्यार्थियों को लैटिन अमेरिका में नस्लवाद के मुद्दे पर विभिन्न दृष्टीकोणों को समझाने में सहायता करेगा।

लेखों चयन ज्ञान-मीमांसा उपनिवेशवाद / एपिस्टेमिक डीकोलोनिअल्टी के कुछ मानदंडों के आधार पर किया गया है । चुने हुए लेखों का विश्लेषण का उद्देश्य उनकी व्याख्या करना नहीं है, बल्कि यह तर्क देना है कि उनका चयन कैसे उचित है और वे सबसे अदृश्य को दृश्यता देने के मुख्य ज्ञानमीमांसा सम्बंधी मुद्दे का अनुपालन कैसे करते हैं। निश्चित रूप से चुने हुए लेखों को गुणात्मक और अत्यधिक तर्कपूर्ण बनाने का एक प्रयास किया गया है।

BIBLIOGRAPHY:

Alcoff, Linda Martín. “Mignolo's Epistemology of Coloniality.” *CR: The New Centennial*

Alcoff, Linda. “A Epistemologia Da Colonialidade De Mignolo.” *Epistemologias do Sul* 1.3 (2017): 33–59. Print.

Alzugaray, Pilar, et al. Preparacion DELE: Libro + audio descargable - B2. Edelsa Grupo Didascalia, 2019.

Amin, Samir. “The Ancient World-Systems versus the Modern Capitalist World-System.” *Review (Fernand Braudel Center)*, vol. 14, no. 3, 1991, pp. 349–85.

Amin, Samir. *Eurocentrism*. NYU Press, 1988.

Amin, Samir. *Eurocentrism: Modernity, Religion and Democracy - A Critique of Eurocentrism and Culturalism*. 2nd ed., Pambazuka Press, 2010.

Arguedas, José María. “CIRCULAR.” *Yawar Fiesta*, University of Texas Press, 1985.

Arguedas, Jose Maria. *Yawar Fiesta*. Translated by Frances H. Barraclough, University of Texas Press, 1985.

Arnedo-Gómez, Miguel. “The Afrocubanista Poetry of Nicolás Guillén and Ángel Rama's Concept of Transculturation.” *Afro-Hispanic Review*, vol. 26, no. 2, 2007, pp. 9–25. *JSTOR*,www.jstor.org/stable/23054617.

Arnedo-Gomez, Miguel. *Uniting Blacks in a Raceless Nation: Blackness, Afro-Cuban Culture, and Mestizaje in the Prose and Poetry of Nicolas Guillen*. Bucknell University Press, 2019.

Aronowitz, Stanley. “Paulo Freire’s Radical Democratic Humanism: The Fetish of Method.” *Counterpoints*, vol. 422, 2012, pp. 257–74.

Aula internacional nueva edición 5 (B2.2): Libro del alumno + MP3-CD + Premium. Klett Sprachen, 2018.

Bandy, Joe, M. Brielle Harbin, and Amie Thurber. “Teaching Race and Racial Justice: Developing Students’ Cognitive and Affective Understanding.” *Teaching and Learning Inquiry* 9.1 (2021): 117–138. *Teaching and Learning Inquiry*. Web.

Baro, Dionisio Poey. “‘Race’ and Anti-Racism in Jose Marti’s ‘Mi Raza.’” *Contributions in Black Studies A Journal of African and Afro-American Studies*, vol. 12, no. Article 6, 1994.

Barreda-Tomás, Pedro M. “Alejo Carpentier: Dos Visiones Del Negro, Dos Conceptos De La Novela.” *Hispania*, vol. 55, no. 1, 1972, pp. 34–44. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/338243.

Becker, Marc. “Mariátegui, the Comintern, and the Indigenous Question in Latin America.” *Science and Society* 70.4 (2006): 450–479. *Science and Society*. Web.

Beltz, Johannes. Mahar, Buddhist and Dalit: Religious Conversion and Social Political Emancipation. Manohar Publishers and Distributors, 2005.

Bentley, George Frederico Oliveira. “Latin American Identity in *The Tempest*: Ariel or Caliban.” *Revista de Pós-Graduação Em Letras UNESP – Campus de Assis* , vol. 7, 2010.

Berberoglu, Berch. “Wallerstein and World-Systems Theory.” *Social Theory*. Routledge, 2020. 225–230. *Social Theory*.

Bora, Papori. “The Problem Without a Name: Comments on Cultural Difference (Racism) in India.” South Asia: Journal of South Asia Studies 42.5 (2019): 845–860. South Asia: Journal of South Asia Studies. Web.

Boyd, Antonio Olliz. “Latin American Literature and the Subject of Racism.” *CLA Journal*, vol.57, no. 3, 2014, pp. 177–184. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/44325865.

Burdumy, Alexander, and Christine Bohlander. “Designing and Delivering a Programme of Reading Skills Classes to Postgraduate Students.” *Journal of Teaching English for Specific and Academic Purposes* (2018): 245. *Journal of Teaching English for Specific and Academic Purposes*. Web.

Cajero Vázquez, Antonio. “El Héroe Sin Rostro. Los Personajes de Yawar Fiesta.” *Revista de El Colegio de San Luis* 2 (2014): 124. *Revista de El Colegio de San Luis*. Web.

Camelo, Diego Fernando. “Enrique Dussel y El Mito de La Modernidad.” *Cuadernos de Filosofía Latinoamericana* 38.116 (2018): 97–115. *Cuadernos de Filosofía Latinoamericana*. Web.

Castillejos Rodríguez, Francisco Javier. “Enrique Dussel: Entre Latinoamérica y La Hermenéutica de La Otredad.” *Agora: papeles de Filosofía* 38.1 (2018): n. pag. *Agora: papeles de Filosofía*. Web.

Cesaire, Aime. *A Tempest*. Translated by Richard Miller, Theatre Communications Group, 2002.

Chandran, Manju. “The Shameful History of Racism in Bollywood.” *EasternEye*, 25 June 2020, https://www.easterneye.biz/the-shameful-history-of-racism-in-bollywood/.

Charan, Amita, and Jitendra Kumar Verma. “Characterizing Social Media Contents for Regulating Hate Crimes and Cyber Racism against Marginalized and Dalits in India.” *2020 International Conference on Computational Performance Evaluation, ComPE 2020*. Institute of Electrical and Electronics Engineers Inc., 2020. 864–871. *2020 International Conference on Computational Performance Evaluation, ComPE 2020*. Web.

Chatterjee, Arnab. “Survival, Struggle and Identity in Dalit and Afro-American Literature.” *Deleuzian and Guattarian Approaches to Contemporary Communication Cultures in India*. Springer Singapore, 2020. 191–205. *Deleuzian and Guattarian Approaches to Contemporary Communication Cultures in India*. Web.

Chávez, Kerry, and Kristina M.W. Mitchell. “Exploring Bias in Student Evaluations: Gender, Race, and Ethnicity.” *PS - Political Science and Politics* 53.2 (2020): 270–274. *PS - Political Science and Politics*. Web.

Chetty, Naganna, and Sreejith Alathur. “Racism and Social Media: A Study in Indian Context.” *International Journal of Web Based Communities* 15.1 (2019): 44–61. *International Journal of Web Based Communities*. Web.

Ciappina, Damián, and Patricia Alejandro. “Entrevista a Enrique Dussel.” *Cuadernos Filosóficos / Segunda Época* 14 (2018): 102–117. *Cuadernos Filosóficos / Segunda Época*. Web.

Constance-Huggins, Monique. “Intersection of Race, Gender, and Nationality in Teaching about Race and Racism.” *Reflective Practice* 19.1 (2018): 81–88. *Reflective Practice*. Web.

Constance-Huggins, Monique. “Intersection of Race, Gender, and Nationality in Teaching about Race and Racism.” *Reflective Practice* 19.1 (2018): 81–88. *Reflective Practice*. Web.

Contursi, Janet A. “Political Theology: Text and Practice in a Dalit Panther Community.” *The Journal of Asian Studies*, vol. 52, no. 2, 1993, pp. 320–39.

Cortez, Enrique E. “José María Arguedas, Etnógrafo: Campo Cultural y Mestizaje.” *Letras (Lima)* 87.125 (2016): 69–92. *Letras (Lima)*. Web.

“Cuban Cultural Leader Makes Rare Visit to England.” The University of Manchester, 26 May 2009, https://www.manchester.ac.uk/discover/news/cuban-cultural-leader-makes-rare-visit-to-england/.

Dahl, Anthony G. “Resolving the Question of Identity: Nicolás Guillén's ‘La Balada De Los Dos Abuelos.’” *Afro-Hispanic Review*, vol. 14, no. 1, 1995, pp. 10–17. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/23055188.

Dattatreyan, Ethiraj Gabriel. “Desiring Bollywood: Re-Staging Racism, Exploring Difference.” *American Anthropologist* 122.4 (2020): 961–972. *American Anthropologist*. Web.

de Baets, Antoon. “Eurocentrism in the Writing and Teaching of History.” *A Global Encyclopedia of Historical Writing*, edited by Daniel Woolf, Garland Publishing, 1998, p. 298.

De la Cadena, Marisol. “Silent Racism and Intellectual Superiority in Peru.” *Bulletin of Latin American Research*, vol. 17, no. 2, 1998, pp. 143–164. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/3339226.

Delgado, L. Elena, et al. “Local Histories and Global Designs: An Interview with Walter Mignolo.” *Discourse*, vol. 22, no. 3, 2000, pp. 7–33. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41389582.

Delgado, L. Elena, Rolando J. Romero, and Walter Mignolo. “Local Histories and Global Designs: An Interview with Walter Mignolo.” *Discourse* 22.3 (2000): 7–33. *Discourse*. Web.

Donoso-Miranda, Paz. “Pensamiento Decolonial En Walter Mignolo: América Latina: ¿transformación de La Geopolítica Del Conocimiento?” *Temas De Nuestra América Revista De Estudios Latinoaméricanos.* 30.56 (2013): 45–56. Print.

Dover, Alison G. “Teaching for Social Justice and the Common Core: Justice-Oriented Curriculum for Language Arts and Literacy.” *Journal of Adolescent and Adult Literacy* 1 Mar. 2016: 517–527. *Journal of Adolescent and Adult Literacy*. Web.

DuBois, Marc. “The Governance of the Third World: A Foucauldian Perspective on Power Relations in Development.” *Alternatives: Global, Local, Political*, vol. 16, no. 1, 1991, pp. 1–30. *JSTOR*, http://www.jstor.org/stable/40644700.

Dussel, Enrique D, et al. *Ethics of Liberation in the Age of Globalization and Exclusion*. Durham ; London, Duke University Press, 2013.

Dussel, Enrique. “1492 El Encubrimiento Del Otro.” *Endocrinology and metabolism clinics of North America* 1994: 451–466. Print.

Dussel, Enrique. “Enrique Dussel: Without Epistemic Decolonization, There Is No

Dussel, Enrique. “Eurocentrism and Modernity (Introduction to the Frankfurt Lectures).” *Boundary 2*, vol. 20, no. 3, 1993, pp. 65–76. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/303341.

Dussel, Enrique. *Ethics of Liberation: In the Age of Globalization and Exclusion*. Edited by Alejandro A. Vallega, Translated by Eduardo Mendieta et al., Duke University Press, 2013.

Ellis, Keith. “Images of Black People in the Poetry of Nicolás Guillén.” *Afro-Hispanic Review*,vol. 7, no. 1/2/3, 1988, pp. 19–22. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/23054119.

ENUMAH, LISETTE. “White Supremacy and Teacher Education: Balancing Pedagogical Tensions When Teaching about Race.” *Teachers College Record* 123.1 (2021): n. pag. *Teachers College Record*. Web.

Escobar, Arturo. “Development, Violence and the New Imperial Order.” *Development* 47.1 (2004): 15–21. *Development*. Web.

Escobar, Arturo. “Imagining a Post-Development Era? Critical Thought, Development and Social Movements.” *Social Text*, no. 31/32, 1992, pp. 20–56. *JSTOR*, https://doi.org/10.2307/466217.

Escobar, Arturo. “Worlds and Knowledges Otherwise: The Latin American Modernity/ Coloniality Research Program.” *Cultural Studies* 21.2–3 (2007): 179–210. *Cultural Studies*. Web.

F, Charles Hegel, J Sibree, Carl J**.** Friedrich, and J Sibree. The Philosophy of History. New York: Dover Publications, 1956.

Fanon, Frantz, 1925-1961. The Wretched of the Earth. New York :Grove Press, 1968.

Fernandes, Walter. "The emerging dalit identity: The reservation of the subalterns." *New Delhi: ISI Publication* (1996).

Fernandez Retamar, Roberto. “Caliban: Notes Toward a Discussion of Culture in Our America.” *The Latin American Cultural Studies Reader*. Duke University Press, 2020. 83–99. *The Latin American Cultural Studies Reader*. Web.

Fernández Retamar, Roberto. *Caliban and Other Essays*. reprint ed., U of Minnesota Press, 1989.

Foucault, Michel, 1926-1984. Discipline and Punish : the Birth of the Prison. New York :Pantheon Books, 1977.

Fountain, Anne. *José Martí, the United States, and Race*. University Press of Florida, 2014.

Franco, Jean. “From Modernization to Resistance: Latin American Literature 1959-1976.” *Latin American Perspectives*, vol. 5, no. 1, 1978, pp. 77–97. *JSTOR*, http://www.jstor.org/stable/2633340.

Franco, Jean. *An Introduction to Spanish-American Literature*. Cambridge University Press, 2000.

Frantz Fanon. *The Wretched of the Earth : Frantz Fanon*. New York, Grove Press, 2004.

Freire, Paulo. *Pedagogy of the Oppressed*. Translated by Myra Bergman Ramos, Sheed & Ward, 1972.

Gandarilla Salgado, José Guadalupe, María Haydeé García-Bravo, and Daniele Benzi. “Two Decades of Aníbal Quijano’s Coloniality of Power, Eurocentrism and Latin America.” *Contexto Internacional* 43.1 (2021): 199–222. *Contexto Internacional*. Web.

Gokhale-Turner, Jayashree B. “The Dalit Panthers and the Radicalisation of the Untouchables.” *The Journal of Commonwealth & Comparative Politics* 17.1 (1979): 77–93. *The Journal of Commonwealth & Comparative Politics*. Web.

Guillén, Nicolás, and Teresa Labarta De Chaves. “Poems.” *Latin American Literary Review*, vol.2, no. 3, 1973, pp. 113–120. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/20118902.

Guillen, Nicolas, Langston Hughes, and Ben Frederic Carruthers. “Negro Bembon/Thick-Lipped Cullud Boy.” *Callaloo* 31 (1987): 172. *Callaloo*. Web.

Guillén, Nicolás. “NEGRO BEMBÓN.” *Sóngoro Cosongo,Colección Antares*, Libresa, 1997.

Guillen, Nicolas. *Motivos de Son*. 2008th ed., Grupo Editorial Tomo.

Gupta, Sonya Surabhi, editor. *Subalternities in India and Latin America: Dalit Autobiographies and the Testimonio*. Routledge, 2021.

Harbin, M.B., Amie Thurber, and Joe Bandy. “Teaching Race, Racism, and Racial Justice: Pedagogical Principles and Classroom Strategies for Course Instructors.” *Race and Pedagogy Journal* 4.1 (2019): 285–299. Print.

Haré, Cecilia. “Arguedas y El Mestizaje de La Lengua: Yawar Fiesta.” *Lexis* 25.1–2 (2001): 475–487. Print.

Hart, Stephen M. *A Companion to Latin American Literature*. Woodbridge, Suffolk Uk ;Rochester, Ny, Tamesis, 2007.

Hoagland, Sarah Lucia. “Aspects of the Coloniality of Knowledge.” *Critical Philosophy of Race* 8.1–2 (2020): 48–60. *Critical Philosophy of Race*. Web.

Jackson, Shirley A. “Theorizing Race, Class, and Gender Studies.” *Routledge International Handbook of Race, Class, and Gender* 1 Jan. 2014: 1–2. *Routledge International Handbook of Race, Class, and Gender*. Web.

Jefferson, Antonette. “The Rhetoric of Revolution: The Black Consciousness Movement and the Dalit Panther Movement.” *The Journal of Pan African Studies* 2.5 (2008): 46–59. *The Journal of Pan African Studies*. Web.

José María Arguedas, and José Luis Rouillón. *Cuentos Olvidados*. Lima, Imágenes Y Letras,1973.

Joseph, Margaret Paul. *Caliban in Exile-The Outsider in Caribbean Fiction*. Greenwood Press, 1992.

Kapur, Radhika. *Development of Teaching-Learning Materials*. N.p., 2019. Print.

Kelly, R. Gordon. “Literature and the Historian.” *American Quarterly*, vol. 26, no. 2, 1974, pp. 141–59. *JSTOR*, https://doi.org/10.2307/2712232. Accessed 20 Jun. 2022.

Kikon, Dolly. “Dirty Food: Racism and Casteism in India.” *Ethnic and Racial Studies* 45.2 (2022): 278–297. *Ethnic and Racial Studies*. Web.

Kim, Hun-Ki. “A Fraction of Tricontinentalism— Mariátegui and the Race Problem in Latin America.” *The Historical Journal* 72 (2020): 431–452. *The Historical Journal*. Web.

Kishimoto, Kyoko. “Anti-Racist Pedagogy: From Faculty’s Self-Reflection to Organizing within and beyond the Classroom.” *Race Ethnicity and Education* 21.4 (2018): 540–554. *Race Ethnicity and Education*. Web.

Krishnaswamy, Revathi. “Transmodern Liberation Philosophies: B. R. Ambedkar and Enrique Dussel.” *Interventions* (2021): n. pag. *Interventions*. Web.

Kumar, Dr. Vivek. “Nature and Dynamics of Caste Discrimination on Higher Education Campuses: A Perspective from Below.” *Cross-Currents: An International Peer-Reviewed Journal on Humanities & Social Sciences* 7.1 (2021): 34–40. *Cross-Currents: An International Peer-Reviewed Journal on Humanities & Social Sciences*. Web.

L. Gabrielsen, Ida, Marte Blikstad-Balas, and Michael Tengberg. “The Role of Literature in the Classroom: How and for What Purposes Do Teachers in Lower Secondary School Use Literary Texts?” *L1 Educational Studies in Language and Literature* 19, Running Issue.Running Issue (2019): 1–32. *L1 Educational Studies in Language and Literature*. Web.

Lander, Edgardo. *La Colonialidad Del Saber: Eurocentrismo y Ciencias Sociales: Perspectivas Latinoamericanas*. Consejo Latinoamericano de Ciencias Sociales (Clacso), 2004.

Lichty, Lauren F., and Eylin Palamaro-Munsell. “Pursuing an Ethical, Socially Just Classroom: Searching for Community Psychology Pedagogy.” *American Journal of Community Psychology* 60.3–4 (2017): 316–326. *American Journal of Community Psychology*. Web.

Lugones, María, and Joshua Price. “The Inseparability of Race, Class, and Gender in Latino Studies.” *Latino Studies* 1.2 (2003): 329–332. *Latino Studies*. Web.

Machover, Jacobo. “en busca de la identidad perdida.” *Revista De Libros*, no. 23, 1998, pp. 47– 47. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/30228830.

Maldonado-Torres, Sergio. “Walter Mignolo: Una Vida Dedicada Al Proyecto Decolonial.” *Nomadas* 26 (2007): 186–195. *Nomadas*. Web.

Mariátegui, José Carlos. “The Land Problem (1928).” *José Carlos Mariátegui An Anthology*, edited by Harry E. VANDEN and MARC BECKER, Monthly Review Press, 2011.

Mariátegui, José Carlos. “The Problem of Race: Approaching the Issue.” *Key Texts for Latin American Sociology*. SAGE Publications Ltd, 2020. 186–200. *Key Texts for Latin American Sociology*. Web.

Maritegui, Jos Carlos. *Siete Ensayos de Interpretacin de La Realidad Peruana*. Linkgua Ediciones, 2008.

Marquez, Roberto. “Racism, Culture and Revolution: Ideology and Politics in the Prose of Nicolas Guillen.” *Latin American Research Review*, vol. 17, no. 1, 1982, pp. 43 68. *JSTOR*,www.jstor.org/stable/2502940.

Martell, Christopher C., and Kaylene M. Stevens. “Equity- and Tolerance-Oriented Teachers: Approaches to Teaching Race in the Social Studies Classroom.” *Theory and Research in Social Education* 45.4 (2017): 489–516. *Theory and Research in Social Education*. Web.

Martí, José. “Mi Raza.” *Patria*, 16 Apr. 1893, https://www.academia.edu/36324849/_Mi_raza_Jos%C3%A9_Mart%C3%A

Martí, José. *Obras - Colección de José Martí Biblioteca de Grandes Escritores*. 2015.

McCarthy, Bridie. “Identity as Radical Alterity: Critiques of Eurocentrism, Coloniality, and Subjectivity in Contemporary Australian and Latin American Poetry.” *Antipodes*, vol. 24, no. 2, 2010, pp. 189–197. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41958696.

Mehra, Parmod Kumar, ed. *Literature and social change: emerging perspectives in Dalit literature*. Kalpaz Publications, 2015.

Mignolo, Walter D. “Colonial and Postcolonial Discourse: Cultural Critique or Academic Colonialism?” *Latin American Research Review*, vol. 28, no. 3, 1993, pp. 120–134. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/2503613.

Mignolo, Walter D. “Coloniality Is Far from over, and so Must Be Decoloniality.” *Afterall* 43 (2017): 38–45. *Afterall*. Web.

Mignolo, Walter D. “Racism as We Sense it Today.” *PMLA*, vol. 123, no. 5, 2008, pp. 1737–1742. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/25501980.

Mignolo, Walter D. “The Geopolitics of Knowledge and the Colonial Difference.” *South Atlantic Quarterly* 101.1 (2002): 56–96. *South Atlantic Quarterly*. Web.

Mignolo, Walter D. “The Global South And World Dis/Order.” *Journal of Anthropological Research*, vol. 67, no. 2, 2011, pp. 165–188. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41303282.

Mignolo, Walter D. *Local Histories / Coloniality, Subaltern Knowledges, and Border Thinking*. Princeton, Princeton University Press, 2000.

Mignolo, Walter D. *The Darker Side of the Renaissance*. Ann Arbor, Univ. Of Michigan Press,[Ca, 1998.

Mignolo, Walter D., and Michael Ennis. “Coloniality at Large: The Western Hemisphere in the Colonial Horizon of Modernity.” *CR: The New Centennial Review*, vol. 1, no. 2, 2001, pp. 19–54. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41949278.

Mignolo, Walter D., The Geopolitics of Knowledge and the Colonial Di√erence.” *Coloniality at Large*. Duke University Press, 2021. 225–258. *Coloniality at Large*. Web.

Mignolo, Walter. *Capitalismo y Geopolítica Del Conocimiento : El Eurocentrismo y La Filosofía de La Liberación En El Debate Intelectual Contemporáneo*. Buenos Aires, Ediciones Del Signo, 2001.

Misoczky, Maria Ceci Araujo. “Contributions of Aníbal Quijano and Enrique Dussel for an Anti-Management Perspective in Defence of Life.” *Cuadernos de Administracion* 32.58 (2019): n. pag. *Cuadernos de Administracion*. Web.

Mittal, Sushil, and Gene Thursby, editors. *Religions of India: An Introduction*. 2nd ed., Routledge, 2017.

Montero, Oscar. “Against Race.” *José Martí: An Introduction*, New Directions in Latino American Cultures, Palgrave Macmillan, New York, 2004, pp. 59–84.

Mosquera, Carlos Cruz. “Jose Carlos Mariategui: Welding Marxism and Indigenism in Latin America Today.” *Journal of Labor and Society* 21.1 (2018): 5–17. *Journal of Labor and Society*. Web.

Narang, Harish, ed. *Writing Black, Writing Dalit: Essays in Black African and Dalit Indian Writings;[proceedings of the National Seminar on Black and Dalit Writings, Held at Shimla in 1997]*. Indian Institute of Advanced Study, 2002.

Narayan, Badri. *Documenting dissent: Contesting fables, contested memories, and Dalit political discourse*. Indian Institute of Advanced Study, 2001.

NAZİR, Thseen, and Liyana THABASSUM. “THE ROLE OF SOCIAL SYSTEMS IN THE CONCEPTION AND PERPETUATION OF BULLYING CULTURE IN INDIA.” International Journal of Current Approaches in Language Education and Social Sciences (2021): 69–82. International Journal of Current Approaches in Language Education and Social Sciences. Web.

Omvedt, Gail. *Dalit visions: The anti-caste movement and the construction of an Indian identity*. Orient Blackswan, 2006.

Pandey, Aditya. “4 Racist Stereotypes Bollywood Shows towards the World, Proving We’re Equally Flawed.” *MensXP*, 21 Apr. 2021, https://www.mensxp.com/special-features/features/79528-racism-in-bollywood-stereotypes-that-the-indian-film-industry-shows-in-their-films.html.

Pasco, Allan H. “Literature as Historical Archive.” *New Literary History*, vol. 35, no. 3, 2004, pp. 373–94. *JSTOR*, http://www.jstor.org/stable/20057844. Accessed 20 Jun. 2022.

Phule, Jyotirao Govindrao. *Gulamgiri*. Createspace Independent Publishing Platform, 2017.

Pino, Julio César. “A Twenty-First-Century Agenda for Teaching the History of Modern Afro-Latin America and the Caribbean.” *Latin American Perspectives* 31.1 (2004): 39–58. *Latin American Perspectives*. Web.

Quijano, Aníbal, and Danilo De. *Cuestiones y Horizontes : De La Dependencia Histórico-Estructural a La Colonialidad/Descolonialidad Del Poder : Antología Esencial*. Buenos Aires, Clacso, Abril De, 2014.

Quijano, Anibal, and Peggy Westwell. “Imperialism and Marginality in Latin America.” *Latin American Perspectives*, vol. 10, no. 2/3, 1983, pp. 76–85. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/2633460.

Quijano, Aníbal. “Colonialidad Del Poder y Clasificación Social.” *Cuestiones y Horizontes: De La Dependencia Histórico-Estructural a La Colonialidad/Descolonialidad Del Poder*, CLACSO, 2020, pp. 325–70.

Quijano, Anibal. “Colonialidad Del Poder, Eurocentrismo y América Latina.” *La Colonialidad Del Saber. Eurocentrismo y Ciencias Sociales. Perspectivas Latinoamericanas*, edited

by Edgardo Lander, CLACSO, Consejo Latinoamericano de Ciencias Sociales., 2000, p. 204.

Quijano, Aníbal. “Coloniality and Modernity/Rationality.” *Cultural Studies* 21.2–3 (2007): 168–178. *Cultural Studies*. Web.

Quijano, Aníbal. “Coloniality of Power and Eurocentrism in Latin America.” *International Sociology* 15.2 (2000): 215–232. *International Sociology*. Web.

Quijano, Aníbal. “Coloniality of Power and Eurocentrism in Latin America.” *International Sociology*, vol. 15, no. 2, June 2000, pp. 215–232, 10.1177/0268580900015002005. Accessed 11May 2019.

Quijano, Aníbal. “Modernity, Identity, and Utopia in Latin America.” *Boundary 2*, vol. 20, no. 3, 1993, pp. 140–155. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/303346.

Quintana, Leonor, and Rosa Maria Perez. *Preparacion DELE: Libro + audio descargable - C1 (2019 edition)*. Edelsa Grupo Didascalia, 2019.

Quintero, Pablo. “Notas Sobre La Teoría de La Colonialidad Del Poder y La Estructuración de La Sociedad En América Latina.” *Papeles de Trabajo. Centro de Estudios Interdisciplinarios en Etnolingüística y Antropología Socio-Cultural* 19 (2020): 1–15. *Papeles de Trabajo. Centro de Estudios Interdisciplinarios en Etnolingüística y Antropología Socio-Cultural*. Web.

Rai, Rohini. “From Colonial ‘Mongoloid’ to Neoliberal ‘Northeastern’: Theorising ‘Race’, Racialization and Racism in Contemporary India.” *Asian Ethnicity* 23.3 (2022): 442–462. *Asian Ethnicity*. Web.

Rajgopal, Shoba Sharad. “Dalit/Black Solidarity: Comrades in the Struggle for Racial/Caste Justice.” *South Asian Popular Culture* 19.1 (2021): 81–86. *South Asian Popular Culture*. Web.

Rawat, Ramnarayan. “Genealogies of the Dalit Political: The Transformation of Achhut from ‘Untouched’ to ‘Untouchable’ in Early Twentieth-Century North India.” *Indian Economic and Social History Review* 52.3 (2015): 335–355. *Indian Economic and Social History Review*. Web.

Renan, Ernest. *Caliban: A Philosophical Drama Continuing the Tempest of William Shakespeare (Classic Reprint) (Paperback)*. Forgotten Books, 2018.

Retamar, Roberto Fernández, et al. “Caliban: Notes towards a Discussion of Culture in Our America.” *The Massachusetts Review*, vol. 15, no. 1/2, 1974, pp. 7–72. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/25088398.

Retamar, Roberto Fernández. “Caliban (1971).” *Pensamiento Anticolonial de Nuestra América*. CLACSO, 2020. 139–208. *Pensamiento anticolonial de nuestra América*. Web.

Retamar, Roberto Fernández. “CALIBAN.” *TODO CALIBAN*, edited by Marta Rojas, The Instituto Latinoamericano de Servicios Alternativos, 2005, pp. 36–38.

Retamar, Roberto Fernández. “III.2.7 Caliban: A Question.” *Resisting Categories: Latin American and/or Latino?*. Yale University Press, 2022. 509–513. *Resisting Categories: Latin American and/or Latino?*. Web.

Review, vol. 7, no. 3, 2007, pp. 79–101. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/41949566.

Revolution.” *Venezuelanalysis.Com*, 25 Oct. 2018, venezuelanalysis.com/analysis/12734.Accessed 9 May 2019.

Rivas, Axel, and Belen Sanchez. “Race to the Classroom: The Governance Turn in Latin American Education. The Emerging Era of Accountability, Control and Prescribed Curriculum.” *Compare* 52.2 (2022): 250–268. *Compare*. Web.

Roberto González Echevarría, and Enrique Pupo-Walker. *The Cambridge History of Latin American Literature. Vol. 2, The Twentieth Century*. Cambridge, Uk, Cambridge University Press, 2006.

Rodrigo-Mateu, Amparo. “Language, Culture and Interculturality through Narratives with Learners of Spanish as a Foreign Language.” *Bellaterra Journal of Teaching and Learning Language and Literature* 11.4 (2018): 41–58. *Bellaterra Journal of Teaching and Learning Language and Literature*. Web.

Rodríguez Reyes, Abdiel. “Enrique Dussel y El Pensamiento Crítico de La Liberación.” *Brocar. Cuadernos de Investigación Histórica* 40 (2016): 199–220. *Brocar. Cuadernos de Investigación Histórica*. Web.

Ruman Sutradhar. “Dalit Movement in India: In the Light of Four Dalit Literatures.” *IOSR Journal of Dental and Medical Sciences* 13.4 (2014): 91–97. *IOSR Journal of Dental and Medical Sciences*. Web.

Said, Edward W. Orientalism. New York: Pantheon Books, 1978. Print.

Sambaraju, Rahul. “‘We Are the Victims of Racism’: Victim Categories in Negotiating Claims about Racism against Black-Africans in India.” *European Journal of Social Psychology* 51.3 (2021): 467–484. *European Journal of Social Psychology*. Web.

Sarwoto, Paulus. *The Figuration of Caliban in the Constellation of Postcolonial Theory*. Louisiana State University, 2004.

Satya, Laxman D. “Eurocentrism in World History: A Critique of Its Propagators.” *Economic and Political Weekly*, vol. 40, no. 20, 2005, pp. 2051–55.

Schutte, Ofelia. “Undoing ‘Race’: Martí’s Historical Predicament.” *Forging People: Race, Ethnicity, and Nationality in Hispanic American and Latino/a Thought*. University of Notre Dame Press, 2011. 99–123. Print.

Shakespeare, William. *The Tempest*. MVB E-Books, 2010.

Sharma, Pradeep K. *Dalit politics and literature*. Shipra Publications, 2006.

Singh, Maanvender. “Relentless Racism Never End.” *Countercurrents.Org*, 7 Sept. 2016, https://countercurrents.org/2016/09/relentless-racism-never-end/.

Sirohi, Rahul A., and Sonya Surabhi Gupta. “The Political Economy of Race and Caste: Revisiting the Writings of Mariátegui and Ambedkar †.” *Journal of Labor and Society* 23.3 (2020): 399–413. *Journal of Labor and Society*. Web.

Sium, Aman, and Eric Ritskes. “Speaking Truth to Power: Indigenous Storytelling as an Act of Living Resistance.” *Decolonization. Indigeneity, Education & Society* 22.1 (2013): I–X. Print.

Smith, Linda Tuhiwai. *Decolonizing Methodologies: Research and Indigenous Peoples*. Edited by Linda Tuhiwai Smith, 2nd ed., Otago University Press, 2012.

Stephen M. Hart. “Vallejo's ‘Other’: Versions of Otherness in the Work of César Vallejo.” *The Modern Language Review*, vol. 93, no. 3, 1998, pp. 710–723. *JSTOR*, www.jstor.org/stable/3736492.

Suárez Pomar, Magdalena. “Traducción, Mestizaje y Transculturación En Tres Textos de José María Arguedas.” *Latinoamérica. Revista de Estudios*

Latinoamericanos 74 (2022): 161. *Latinoamérica. Revista de Estudios Latinoamericanos*. Web.

Sundiata, Ibrahim K. “Caste, The Origins of Our Discontents: A Historical Reflection On Two Cultures.” *CASTE / A Global Journal on Social Exclusion* 2.1 (2021): 17–29. *CASTE / A Global Journal on Social Exclusion*. Web.

Syeed, Esa. “Conflict between Covers: Confronting Official Curriculum in Indian Textbooks.” Curriculum Inquiry 48.5 (2018): 540–559. Curriculum Inquiry. Web.

Telles, Edward, and Stanley Bailey. “Understanding Latin American Beliefs about Racial Inequality.” *American Journal of Sociology*, vol. 118, no. 6, 2013, pp. 1559–1595. *JSTOR*,www.jstor.org/stable/10.1086/670268.

Telles, Edward. *Pigmentocracies: Ethnicity, Race, and Color in Latin America*. University of North Carolina Press, 2014. *Pigmentocracies: Ethnicity, Race, and Color in Latin America*. Web.

“Thinking and Engaging with the Decolonial: A Conversation between Walter d. Mignolo and Wanda Nanibush.” *Afterall* 45 (2018): 24–29. *Afterall*. Web.

Thomas, Ebony Elizabeth. “‘We Always Talk about Race’: Navigating Race Talk Dilemmas in the Teaching of Literature.” *Research in the Teaching of English* 1 Nov. 2015: 154–175. Print.

Tomlinson, Brian. “Materials Development for Language Learning and Teaching.” *Language Teaching* Apr. 2012: 143–179. *Language Teaching*. Web.

Torres, Nelson Maldonado. “Enrique Dussel's Liberation Thought in the Decolonial Turn.”*TRANSMODERNITY: Journal of Peripheral Cultural Production of the Luso-Hispanic World*,13 May 2011, escholarship.org/uc/item/5hg8t7cj.

Tsai, Jennifer et al. “Addressing Racial Bias in Wards.” *Advances in Medical Education and Practice* 9 (2018): 691–696. *Advances in Medical Education and Practice*. Web.

Vanden, Harry E., and Marc Becker, editors. *Jose Carlos Mariategui: An Anthology*. Monthly Review Press, 2012.

Venkatesan, oumhya. “Violence and Violation Are at the Heart of Racism: The 2017 Debate of the Group for Debates in Anthropological Theory, Manchester.” *Critique of Anthropology* 39.1 (2019): 12–51. *Critique of Anthropology*. Web.

Viveros Vigoya, Mara. “Race and Sex in Latin America, by Peter Wade.” Revista Colombiana de Antropología 48.1 (2012): 279–287. Revista Colombiana de Antropología. Web.

Von Esch, Kerry Soo, Suhanthie Motha, and Ryuko Kubota. “Race and Language Teaching.” *Language Teaching* 1 Oct. 2020: 391–421. *Language Teaching*. Web.

Wade, Peter. “Racism and Race Mixture in Latin America.” *Latin American Research Review* 52.3 (2022): 477–485. *Latin American Research Review*. Web.

Wallerstein, Immanuel, and Fernando Cubides (Traductor). “Abrir Las Ciencias Sociales.” *Revista Colombiana de Educación* 32 (1996): n. pag. *Revista Colombiana de Educación*.

Wallerstein, Immanuel. “EUROCENTRISM AND ITS AVATARS: THE DILEMMAS OF SOCIAL SCIENCE.” *Sociological Bulletin*, vol. 46, no. 1, 1997, pp. 21–39.

Webster, John CB. *Religion and Dalit liberation: An examination of perspectives*. Manohar, 1999.

Weinzimmer, Julianne, and Jacqueline Bergdahl. “The Value of Dialogue Groups for Teaching Race and Ethnicity.” *Teaching Sociology* 46.3 (2018): 225–236. *Teaching Sociology*. Web.

Wilkerson, Isabel. *Caste: The Origins of Our Discontents*. , 2020. Print.

Wilkins, Burleigh Taylor. *Hegel’s Philosophy of History*. Cornell University Press, 1974.

Zembylas, Michalinos. “Decolonizing and Re-Theorizing Radical Democratic Education: Toward a Politics and Practice of Refusal.” *Power and Education* 14.2 (2022): 157–171. *Power and Education*. Web.

Zembylas, Michalinos. “Pedagogies of Strategic Empathy: Navigating through the Emotional Complexities of Anti-Racism in Higher Education.” *Teaching in Higher Education* 17.2 (2012): 113–125. *Teaching in Higher Education*. Web.

सन्दर्भ सूचि:

“वीरेन्द्र सिंह यादव का आलेख - दलित चिन्तन : संघर्ष और मुक्ति के नये क्षितिज.” रचनाकार, https://www.rachanakar.org/2010/08/blog-post_2176.html. Accessed 24 June 2022.

BBC News हिंदी. “कोई चिकन मोमोज़, तो कोई चाउमिन पुकारता है.” *BBC*, BBC News हिंदी, 8 Nov. 2011, https://www.bbc.com/hindi/india/2011/11/111108_northeast_ml.

एंगडे,सुरज. “जातिवाद की जहरीली फसल.” *Https://Caravanmagazine.in/Essay/Race-Caste-and-What-It-Will-Take-to-Make-Dalit-Lives-Matter-Hindi*, June 2021.

कुमार,राजेश. “दलित अस्मिता : पृष्ठभूमि और विकाश.” *International Journal of Hindi Research*, vol. 2, no. 4, July 2016, pp. 71–73.

खुदशाह, संजीव. “डॉ. आंबेडकर ने मनुस्मृति का दहन क्यों किया?” फॉरवर्ड प्रेस, 25 Dec. 2018, https://www.forwardpress.in/2018/12/ambedkar-manusmriti-dalits-obc-tribes/.

जायसवाल,विशाल. “भारत के प्रगतिशील और उदारवादियों की समस्या है कि वे अपना घेरा तोड़कर समाज के बीच नहीं जाते.” *The Wire - Hindi*, 5 Aug. 2021, https://thewirehindi.com/180878/caste-society-media-ghazipur-mein-christopher-caudwell-urmilesh/.

पाण्डेय, अनुराग कुमार. “दलित मिथक और वर्चस्व की वैचारिकी.” *RESEARCH GURU* , vol. 11, no. 3, 2017.

रावत,विद्या भूषण. “जाति, नस्ल और रंग की बीमारी से गंभीर रूप से ग्रस्त भारतीय समाज.” सबरंग, July 2017, https://hindi.sabrangindia.in/article/increased-religious-intolerance-india.

वाल्मीकिओमप्रकाश. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2005.

“बाबा साहेब भीम राव आंबेडकर.” *आरोह कक्षा 12 की हिंदी पाठ्यपुस्तक*, NCERT, 2007.

मीणा,मीनाक्षी. “आंबेडकर : हाशियाकृत समाज के शिक्षाशास्त्री.” *Forwardpress*, Oct. 2017, https://www.forwardpress.in/2017/10/ambedkars-thoughts-on-education-an-overview-hindi/.